ओ३म्

आत्म रस भाग-८

विद्ययाऽमृतमश्नुते

व्याख्या

श्वेताश्वेतरोपनिषद्

स्वर्णजयन्ती-ऋषि सुन्दरियाल

स्मृति-अंक

नव सम्वत्सर चैत्र शु० प्रतिपदा २०५५ २९/३/१९९८

व्याख्याकार :
...श्वम्भरदेव शास्त्री
(स्वतन्त्रता सैनानी)

प्रकाशक
आर्य समाज चौन्दकोट मजगाँव चौबट्टाखाल
जनपद-पौड़ी गढ़वाल (उत्तराखण्ड)
मूल्य-१० रु०

डी० ए० वी० के कार्यकर्ताओं का दल ला. हंसराज, ला. लाजपतराय

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः

परिशिष्टम्

स्मृति-अंक वन्देमातरम्

स्वतन्त्रता आन्दोलन का प्रारम्भ १८५५ के महाकुम्भ से हो गया था। १८५७ उसका फल था। कम्पनी का अत्याचार कम हुआ, ईसाईमत का प्रचार बढ़ा। अंग्रेजो ने भारतीयों की मानसिक शक्ति को दुर्बल बना दिया जिससे कुछ समाज सुधारक अंग्रेजो को महान समझने लगे थे। इस दुर्बलता को दूर करने और स्वाभिमान की जागृति के लिए वेदज्ञ ब्रह्मचारी स्वामी दयानन्द ने अंग्रेजी राज्य की समाप्ति और स्वतन्त्र होने का बिगुल सर्वप्रथम यह कहकर किया, विदेशी अच्छे राज्य से स्वदेशी बुरा राज्य भी सर्वोत्तम होता है।

इसी उद्देश्य से १८७५ में बम्बई में आर्य समाज की स्थापना की। आर्य समाज ने एक क्रान्तिकारी आन्दोलन प्रारम्भ कर जन मानस में राष्ट्रीयता की प्रबल भावना जागृत कर दी। १८८५ में कांग्रेस का जन्म हुआ। जब आर्य विचारों के विद्वान कांग्रेस में आये तो उसकी काया पलट हो गई। स्वतन्त्रता आन्दोलन में सबसे अधिक योग स्वामी दयानन्द के विचारों का ही था। महात्मा गांधी ने सामाजिक सुधारो की शिक्षा स्वामी दयानन्द से ली।

कांग्रेस और आर्य समाज साथ-साथ स्वतन्त्रता आन्दोलन में जुट गये। भारत के नगरों में ही नही दूर-दूर हिमालय की कन्दराओं में बसे गावों ने सक्रिय भाग लिया। वन्दे मातरम और गाँधी टोपी का बोल बाला हो गया।

गढ़वाल क्षेत्र में १९१८ में भयंकर अकाल पड़ा उस समय पंजाब से डी० ए० वी० के कार्यकर्ताओ का दल ला. हंसराज, ला. लाजपतराय

अकाल पीड़ियों की सहायतार्थ उत्तराखण्ड पहुँचे साथ ही ऐसी दैवी, आपत्ति से अपना स्वार्थ निकालने के लिए पीड़ितों को कुछ सहायता का लोभ देकर ईसाई बनाने के लिये क्रिश्चिनों के दल भी पहुँचे, शिल्पकारो को आर्य समाज ने अपनाकर, ईसाई बनने से बचाया। १९३० से गाँधी जी की जय के नारे कन्दराओ में गूंजने लगे।

मजगाँव ग्राम में उस समय दो युवक प्रभावित थे, रामानन्द जी और मास्टर कुमुदानन्द जो। गाँव के हम छोटे–छोटे बालक झण्डा लिए गाँधी जी की जय और वन्देमातरम गाते फिरते थे। एक वयोवृद्ध गाँधीराम, उस समय चमनाऊ स्कूल में मास्टर नाम लिखते भी डरते थे। कांग्रेस को वोट देने वाले ३९ के चुनाव में केवल रामानन्द जी ही थे। नौगांव खाल में गढकेशरी ठा० केशर सिंह, शीशराम जी, कृपा राम, मा० तारादत्त, मा० कुमुदानन्द, रुडीदत्त, चन्द्र सिंह, नारदानन्द आदि का कांग्रेस और आर्य समाज में प्रमुख हाथ था। ४२ में विशेष उत्सव वही होते रहे।

उस समय हम तीन छात्रों को–विश्वम्भर पुत्र श्री पं० सदानन्द जी ऋषिवल्लभ पुत्र श्री रामानन्द जी और गोविन्द राम पुत्र पं० महेशानन्द जी गुरुकुल महाविद्याल ज्वालापुर भेजा। यहाँ पर राष्ट्रीय शिक्षा परिपक्व हुई। ऋषि सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी बना।

वीर ऋषि वल्लभ सुन्दरियाल-

गुरुकुल में राष्ट्रीयता के भावों से भरपूर हो गुरुकुल से निकल आन्दोलन में लीन हो गया। रामप्रसाद विस्मिल, चन्द्र शेखर आजाद सरदार भगत सिंह आदि क्रान्तिकारियों के जीवन से प्रभावित होकर गुरुकुल छोड़ पञ्जाब में जाकर देशभक्ति प्रबल भावना से इतना परिपक्व बना कि हाथ को अग्नि में जलाते हुए कठिन परीक्षा दी। ४२ के आन्द्रोलन में हापुड खुर्जा होते हुए चौन्दकोट अपने गाँव के स्वतन्त्रता सेनानियों के साथ युवकों में जागृति जगानी प्रारम्भ की। पुनः पञ्जाब में जाकर उदरपूर्ति का साधन अपनाया। १९४७ में अङ्गभङ्ग स्वतन्त्रता के कारण कांग्रेस के नेताओं के प्रति युवको का आक्रोश बढ़ने लगा, इस तुष्टिकरण से मुस्लिम लीग ने जो नरसंहार किया उसको सहन न किया गया। जनसंघ का जन्म हुआ, जिससे शुद्ध भारतीयता का नारा लगाया।

जनसेवा व्रती ऋषि–वर्षो तक जनसंघ में कार्यरत रहे जब देखा कि इसमें एकाधिपत्य के कारण तपे-तपाये नेता लोकतन्त्र बचाने हेतु अलग हो गये तो प्रो. बलराज मधोध के राष्ट्रीय लोकतन्त्र संघ में कार्यरत हो गये। देश विभाजन के कारण अनेकों समस्या सामने आ गई । पर्वतीय क्षेत्र की जटिल समस्याये थी स्थान-स्थान पर भ्रमण किया गढ़वाल ही नही बिजनौर, सहारनपुर, मेरठ, बुलन्दशहर, अलीगढ़ और दिल्ली की दशा देखी ।

पौडी में विकट खाद्य पदार्थ चीनी पीने का पानी की समस्या हल करने में जुट गया। गढ़वाल विश्व विद्यालय निर्माण के लिए पूर्ण प्रयास किया इस प्रयास के कारण ऋषि के नाम से विश्व विद्यालय बनता परन्तु राजनीति के सामने कुछ बात न बनी।

पुनरपि ऋषि के पश्चात उसकी पत्नी का सम्मान श्री नगर में किया गया, और एक पुत्र को विश्व विद्यालय में काम दिलाकर कृतज्ञता प्रकट की गई। ऋषि का परममित्र श्री सावल दास ने ऋषि परिवार की भरसक सहायता की।

उत्तराखण्ड राज्य के लिये–सभी पर्वतीय जिलों का तथा रुडकी दिल्ली, लखनऊ में बसे उत्तराखण्डीयों को एकमत लाने के प्रयास में कोई कमी न रखी। उत्तराखण्डीय जब दिल्ली में संसद का घेराव करने को उद्यत हुए तो पहले एक विराट सम्मेलन १० दिसम्बर को वोट क्लब में किया जिसमे मुख्यवक्ता ऋषि वल्लभ सुन्दरियाल ही था। गढ़वाल का प्रिय नेता बना।

जन प्रिय नेता–सामाजिक कार्यो के विषय में कई बार देवकिनन्दन बहुगुणा से आमने-सामने भी भिडन्त हो जाती थी । निर्भीक ऋषि स्पष्ट वक्ता था। गरीब किसान और मजदूरों का तो वह देवता था इनकी समस्याओं को दूर करने के लिये ऋषि ने बिजनौर को मुख्य केन्द्र बनाया। किसानों पर भारी टैक्स तथा उनकी जमीने छीनने के सरकारी षड्यन्त्र का भण्डा फोड करने में कमी न होने दी। बिजनौर

का किसान इतना जागृत हो गया कि स्थान-स्थान पर विशाल रैलिया तथा सभायें होने लगी। उत्तर प्रदेश सरकार के सामने आन्दोलन को दबाना कठिन हो गया। उस समय बिजनौर के किसान और मजदूरों का ऋषि क्या था? यह एक आह्वान पत्र है—

१–आपके पास एक चमकदार हीरा है, जो सारे भारत में चमककर आपके गौरव को चार चाँद लगा सकता है।
२–एक धधकती आग है जो अन्याय तथा भ्रष्टाचार को हटा सकता है।
३–एक आवाज है जो मुर्दा कौमों में जान डाल सकती है।
४–एक गरीब फकीर है जो जनता के लिए सर्वस्व न्योछावर कर सकता है।
५–एक तेजस्वी नेता है जो सारे उत्तराखण्ड की जनता को एक सूत्र में बान्ध सकता है।

कुराजनीति का नशा पाप कर्मो को करने से नही चूक सकती पर्वतीय मुख्य मन्त्री के काल में ऐसा निकृष्ट षडयन्त्र रचा गया जिससे केवल किसान आन्दोलन ही नहा, अपितु उसके नेता को ही समाप्त किया जाये।

१ जुलाई १९७४ को किरतपुर का थानेदार किसानों के मशीहा को अपने थाने में अकेला ले गया उस क्रूर निर्दयी ने विषैला भोजन खिलाकर भारत माँ के इस प्रतिभावान् रत्न को हमसे सदा के लिये विदा कर दिया। १४ जुलाई को बिजनौर टाउन हाल में दिल्ली सहारनपुर, गढ़वाल, पंजाब और बिजनौर हजारो श्रद्धालुओं ने अश्रु भरे नेत्रों से अपने प्रिय नेता को श्रद्धाञ्जलि अर्पित की।

वन्देमातरम्

महिला और युवक बालमंगल दल का योग

४२ स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय जब मजगांव के युवक संघर्षरत थे उस समय गाँव की महिलाये भी पीछे न रही जब सुना कि अंग्रेजी सेना वीरोंखाल से इधर आन्दोलनकारियों को पकड़ने और क्रान्ति को विफल करने आ रही है, तब वीराङ्गनाओं ने जिनमें प्रमुख थी दर्शनोदेवी पत्नी जयानन्द जी की कहने लगी जो हमारे बच्चों को पकड़ने आयेंगे उनके सिर पत्थरों से कुचल देगी। हमें बड़ा साहस मिलता था इनसे स्वतन्त्रता के पश्चात गांव–गाँव में शराब के अड्डे खुलने लगे हमारा गांव भी इससे अछूता न रहा, युवक विशेषकर जिनमें पुरुषोत्तम शिक्षक बन कर चौवट्टा खाल में आया तो गांव में पनपने वाले शराब के अड्डों को तोड–फोड कर बच्चों ने बन्द करवाया चौवट्टा खाल में देशी शराब बनाने का अड्डा महिलाओं ने बन्द कराया यही नही १९९३ में सरकारी शराब की दुकान को उठाने में सारे गांव को बड़े संकट में फंसना पड़ा, एक स्वार्थी व्यक्ति कुछ असामाजिक तत्वों के पैसे के बल पर शराब को दुकान न बनने से बिगड़ गया और तत्कालीन शराबी पक्षधरों के सहारे पर सारे गांव को आतंकवादी घोषित कर घेरने के लिए पौड़ी से अस्त्र शस्त्रों से लैस महिला पुलिस के साथ जत्था मजगाँव में आ धमका। गाँव की वीराङ्गनाये अपने बच्चों को गोद में लेकर सामने आ गई। शराब हटाओ हमे बचाओ का घोष गूंज उठा। तब स्थिति को गम्भीर समझकर डी० एस० पी० आश्चर्य में पड गये। एकतरफा विवाद देखकर कुछ युवक और दो वीराङ्गनाये जिनमें एक ७८ वर्षीया श्रीमती छैला देवी पत्नि विन्दु माधव और युवा सेवी गंगोत्री देवी पत्नि पदमादत्त को पौड़ी ले गये। सौभाग्य **से** वहाँ सांसद और विधायक डा० रमेश पोखरियाल उपस्थित थे उन्होने इस अन्याय पूर्णा पकड़–धकड की निन्दा की और सबको वहाँ से मुक्ति दिलाई। अन्त में न्यायालय ने भी सबको निर्दोष ठहराकर अभियोग ससम्मान समाप्त कर दिया। सरकार ने ठेका उठा दिया।

आगे कुछ ४२ के क्रान्तिकारियों का विवरण अनुज वीरभद्र संकलन करके सूक्ष्मसम दे रहे है। जिसमें सुरेशानन्द, जानकी प्रसाद धनेन्द्र प्रसाद आन्दोलन में रत थे। बीच मे ऋषि बल्लभ और विश्वम्भरदेव भी इनमें हापूड पुलिस की पकड से बचकर आकर मिल गये। पुलिस अक्टूबर में मजगांव में पहुँचो इनके घरो की छानबीन की, क्रान्तिकारी

पहले ही तितर बितर हो गये। जो भी आपत्तिजनक वस्तुए थी उनको वृद्ध कुलानन्द जी एकत्रित कर कम्बल ओढकर गांव से बाहर जाकर जला आये। पकडा जाना अनिवार्य न था।

करो या मरो।

गांव में आर्य समाज कैसे बनी ?

१९२४ में जब ईसाई शिल्पकारों को ईसाई बना रहे थे तब तत्कालीन आर्य समाज के युवा वर्ग ने शिल्पकारों को जनेऊ देने प्रारम्भ कर दिये। इससे कुछ उच्च वर्ग के लोग बिगड़ गये और उन्होने आर्य समाज का विरोध किया। फलस्वरुप मंजगाँव के देवो मेले में प्रचारकों को मारा पीटा गया, दूसरे दिन एकेश्वर मेले में तो आर्य समाजियों को बुरी तरह पीटा गया, वर्षो तक अभियोग चला पौराणिको को सजा मिली।

एक समय ऐसा आया कि मिशनरियों ने अपना जाल फैलाना प्रारम्भ कर दिया और लोगो को लुभाने के लिए उन्होने कपड़े बांटे कुछ चालबाज उनसे मिल गये और घोडिया खेत का सौदा उनको बसाने के लिए होने लगा। मुझे यह विवरण जब मिला मैं देवबन्द से घर गया। गाँओं में घूमा लोगों को समझाया, उस समय हमारे गाँव के प्रतिष्ठित डा० रुद्रदत्त जी गाँव सभा के प्रधान थे, उनसे बात हुई उन्होने मेरी बात मान ली, और ईसाइयों को भूमि देना मना करा दिया। वे जाकर द्रमदेव्रल बस गये।

गाँव के युवकों को एकत्रित किया, पुरुषोत्तम और महावीर प्रसाद का सहयोग रहा इन्होने गाँव सभा में आर्य समाज का भूमि देना स्वीकार कर लिया और आर्य समाज का कार्य प्रारम्भ किया गया। तत्कालीन वयोवृध प्रजापति जी ने पूरा सहयोग देने का वचन दिया। देवबन्द के आर्य समाज के बन्धुओ के सहयोग से एक छोटा सा कक्ष बन गया जिसमें बालकों की पाठशाला चल रही है। पुस्तकालय, औषद्यालय, वृद्ध आश्रम, यज्ञशाला निर्माणार्थ दानदाताओ की प्रतिक्षा है जिससे यह एक शुद्ध वातावरण का पर्यटक स्थान बन सके। आर्य समाज राष्ट्र और संस्कृति के लिए प्रहरी का काम करता है।

विश्वम्भरदेव शास्त्री

विश्वम्भरदेव शास्त्री

(स्वतन्त्रता सैनानी)

मंजगांव ग्राम के उन स्वतन्त्रता सैनिकों में प्रेरणाप्रद गांव के गौरव विश्वम्भरदेव १९३४ में अध्ययन के लिए पहले वेद विद्यालय ऋषिकेश और ३६ में गुरुकुल ज्वाल पुर में ऋषिवल्लभ और गोविन्द के साथ आ गये। राष्ट्र भक्ति का सम्बल लेकर १९४० में गुरुकुल हापुड़ में कांग्रेस कौमी सेवादल का प्रशिक्षण प्राप्त कर ४२ की क्रान्ति में सक्रिय भाग लिया, हापुड़ में वारण्ट निकला किन्तु गाँधी जी के करो या मरो का लक्ष्य लेकर पुलिस की आँखो मे धूल झोककर अपने गाँव ऋषि के साथ आकर आन्दोलन कारियो के साथ घूमने लगे। पुनः राधा कृष्ण संस्कृत महाविद्यालय में प्रवेश लिया। वहां चर्खा चलाया, भारत में अग्रेजी राज के अत्याचारों से छात्रों को जागृत करना प्रतिबन्धित होने पर भी राष्ट्र झण्डा लहराना सेवादल का संगठन और देश भक्ति में लीन रहना। आन्दोलन के समय अंग्रेज सरकार के कार्यों में बाधा डालना, जंगलों में रातें बिताना, गोलियों से बचना आदि संघर्षमय जीवन बिताना, १९४६ में कांग्रेस से प्रतिबन्ध हटना और भारत का खण्डित तथा मुस्लिम लोग का आतंक आगजनि तथा उपद्रव प्रारम्भ के समय मेरठ में कांग्रेस का अधिवेशन होना जिसमें सेवकों का पूरा योगदान रहा। ४७ को १५ अगस्त स्वतन्त्रता दिवस खुर्जे में नागरिक स्वागत प्राप्त करना। तदन्तर पढ़ाई और १९५१ में देवबन्द एच० ए० वी० सेवारत होना। यहां पर राष्ट्रीय पर्वो पर प्रभात फेरी प्रारम्भ करवाना। हिन्दी, संस्कृत समिति तथा अन्य संगठनों का निर्माण आर्य समाज की उन्नति में पूर्ण सहयोग। सार्वदेशिक आर्य वीर दल का संगठन, जिले भर में शिविरों का आयोजन गढ़वाल में आर्यवीर दल के शिविर लगाने प्रारम्भ कर दिये है।

एच० ए० वी० इण्टर कालेज से प्रवक्ता पद से सेवा निवृत्त हो कर, लेखन कार्य विशेष रुप से उपनिषदों के भाष्य ८ प्रकाशित कर

दिये। पत्र पत्रिकाओं में राष्ट्रीय भावनाओं से ओत्–प्रोत लेख समय-समय पर प्रकाशित होते रहते है।

उत्तराखण्ड में बढ़ते हुये पाखण्ड बलिप्रथा शराब आदि से मुक्ति दिलाने वाले आर्य उपप्रतिनिधि सभा गढ़वाल के संगठन जिसके प्रेरक उद्योगपति हीरो नगर लुधियाना के मुन्जाल जी उनके सहयोगी श्री दीनदयाल राय प्रधान एवं वयोवृद्ध श्री पं० शालिगराम जी वजोदी और राजपाल जी बत्रा कोटद्वार आर्य समाज के तत्वावधान में प्रचार में दुर्गम घाटियों में अनाड़ी लोगों के बीच जुड़े हुये है इनकी दीर्घ आयु और स्वस्थता बनी रहे जिससे समाज का मार्गदर्शन अच्छी प्रकार हो सके, ईश्वर से यही विनय है।

वीरभद्र शास्त्री सुन्दरियाल

देश की स्वाधीनता में देह आहुति कर गये जो।
उन शहीदों के लिए वह स्वर्ग इसके सम नही॥

मंजगाँव गाँव के क्रान्तिकारियों में प्रमुख थे, सुरेशानन्द, जानकी प्रसाद, ऋषिवल्लभ, विश्वम्भरदेव, धनेन्द्र आदि।

१–सुरेशानन्द पुत्र श्री ईश्वरीदत्त –

प्रारम्भ में साथियों की टोली में सरदार १९४२ में रामप्रसाद नौटियाल के दल में रातों–रात गाँव–गाँव में भ्रमण स्कूलो में छात्रो को टोली में मिलाना पटवारी, कानूगो आदि को धमकी भरे पत्र और स्कूल बन्द कराकर चेतना भरना। एक समय चान्दनी रात में कई साथी एकेश्वर स्कूल में रात्रि में पहुँचे वहाँ कांग्रेसी नेता मास्टर तारादत्त जी छात्रावास में थें, उन्होने सबको खिचडी खिलाई और प्रातः स्कूल बन्द कर दिया।

आजादी के पश्चात कांग्रेस की सरकार बन गई इन बेचारों को कौन पूछता सुरेशानन्द आजीविका हेतु दिल्ली जाकर कठिन परिश्रम में लग गया। परन्तु जनसेवा वहाँ भी न छूटी। समाजवादी बनकर मजदूरो के रक्षक बन लाल गान्धी टोपी का नेता बन गया, आथिक दशा सुधारने में कठिन परिश्रम करने के कारण असाध्य रोग ने घेर लिया और यह वीर अल्पकाल में ही संसार से विदा हो गया।

२–जानकी प्रसाद पुत्र श्री पं० सदानन्द जी—

परिवार का भार होने पर भी १९४२ की क्रान्ति में कूद पड़े। घर बार की चिन्ता किये बिना आन्दोलन में समर्पित हो गये। स्वतन्त्रता के पश्चात जीविकार्थ दिल्ली चले गये, काम न चला और गाँव में आकर गाँव सुधार के कार्यो में तत्पर हो गये। बनीकरण मार्ग सुधार आदि कार्यो में रहे। ४२ की क्रान्ति के समय पुलिस ने गाँव में घेरा डाला युवक तितर–बितर हो गये। घरो की तलासी होने से पूर्व

वयोवृद्ध पं० कुलानन्द जी आपत्तिजनक वस्तुओ को लेकर दूर खेतों में जला आये । इनको भी असाध्य रोग ने घेर लिया और दिल्ली हिन्दू राव में दिवंगत हो गये।

३–धनेन्द्र पुत्र श्री जीतराम—

आयु में कम होने पर भी नौ गाँव खाल बैठकों में पैदल जाना और सूचना देने का काम करना था । अब दिल्ली में सेवानिवृत्ति का जीवन यापन किया जा रहा है। इस ग्राम में अनेको तत्कालीन युवाओ ने आजीविका हेतु गाँव से प्लायन कर अन्यत्र बस गये । चण्ड़ी प्रसाद बरेली, सच्चिदानन्द उमादत्त, वीरभद्र शास्त्री, भगवन्ता किशौर, विनोद कुमार, कुन्जबिहारी आदि दिल्ली, भैरवदत्त सुन्दरियाल और डा० सुरेन्द्र लखनऊ बुद्धिवल्लभ और शशि प्रसाद रुडकी, नरेन्द्र देव देवबन्द, भगवती प्रसाद कोटद्वार मकान बना लिये। आगे विवरण वीरभद्र शास्त्री, प्रधान आर्य समाज मंजगाँव संकलन करके लिख रहा है ।

भूमिका

आत्म रस-भाग ८

श्वेताश्वतरोपनिषद्

यह उपनिषद् कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय शाखा से सम्बन्धित है, श्वेताश्वतर ऋषि मुनि वैशम्यायन की शिष्य परम्परा में गिने जाते है। ऋषि ने यह उपदेश चारों आश्रम वासियों को दिया, यह षष्ठ अध्याय के २१वे मन्त्र में स्पष्ट लिखा है।

अश्= गति प्राप्ति आदि अर्थवाली धातु से अश्व शक सिद्ध होता है। प्रगतिशील मन, बुद्धि आदि अन्त.करणों और इन्द्रियों को चचलता के कारण अश्व कहा है। श्वेताश्वतर का अर्थ जो पवित्र बुद्धि से संसार सागर को तरने वाला। इसमें ६ अध्याय और १३३ मन्त्र है। लगभग १८ मन्त्र यजु: और ऋग्वेद के कुछ भेद से मूल में दिखाई देते है।

प्रसंगानुसार इसमे साख्यं, योग, सगुण, निर्गुण, द्वैत, अद्वैत सिद्धान्तों का वरर्णान हुआ है। कुछ ब्रह्मवादो मिलकर सृष्टि रचना के कारणों पर विचार करते है। जगत का कारण क्या है? हम कहाँ से उत्पन्न हुये। हमारा मुख्य आधार कौन है? किसकी प्रेरणा से सुख दुःख का भोग कर रहे है। जड चेतन के मेल से सृष्टि की रचना हुई, इसका संयोग-वियोग विधान करने वाला इनसे भिन्न परमात्मा देव है। वह सर्वत्र व्याप्त है, उसको अपने हृदय मन्दिर में पा सकते है अन्यत्र जाने की आवश्यकता नही।

प्रथम अध्याय — उसको पाने का उपाय प्रणाव चिन्तन ओ३म्कार का ध्यान करने से है।

द्वितीय में ,, - ध्यान की विधि स्थान प्रवृत्ति और फल का वर्णन किया है।

तृतोय में ,, — परमात्मा के सगुण और निर्गुण का प्रतिपादन किया है।

चतुर्थ में ,, — तत्व बोध के लिए तथा सांसारिक वन्धन से मुक्ति की प्रार्थना की गई।

पञ्चम में ,, — क्षर, प्रकृति, अक्षर, जीवात्मा दोनो के प्रेरक परमात्मा के स्वरुपों का विवेचन किया गया है।

षष्टम में ,, —परमात्मा के स्वरुप और महत्व का वर्णन करते हुये अन्त में बताया गया है कि उस ब्रह्म को जाने बिना दु:खों का अन्त होना इसी प्रकार असम्भव है। जैसे व्यापक और निरवयव आकाश को चमड़े के समान लपेटना है। अन्त में इस विद्या का अधिकारी कौन हो सकता है यह बताकर ग्रन्थ समाप्त किया है।

राष्ट्र भाषा हिन्दी में अपने ऋषि मुनियों के सिद्धान्तों का अनुवाद के रुप में पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करने में अल्पज्ञ होने के कारण कुछ कमी भी हो गई होगी- इस ओर विज्ञजन मार्ग दर्शक बनने की कृपा करेंगे।

विश्वम्भर देव शास्त्री सुन्दरियाल
एम०ए०संस्कृत-हिन्दी सेवामुक्त प्रवक्ता
(स्वतन्त्रता सैनानि)
चौन्दकोट आर्य समाज मंझ गाँव
चौवट्टाखाल जनपद पौड़ी गढ़वाल

ओ३म्
ब्रह्मणे नमः
आत्मरस भाग-८
श्वेताश्वतरोपनिषद्

ओम् ब्रह्मवादिनो वदन्ति- प्रथम अध्याय

किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवाम केन क्व च सम्प्रतिष्ठाः ।।
अधिष्ठिताः केन सुखतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम् ।।१।।

परब्रह्म परमात्मा का ओइम् नाम का स्मरण कर ब्रह्मवादी ऋषि इस उपनिषद् का आरम्भ करते हैं।

पदार्थः- ब्रह्मवादिन- ब्रह्म के विषय में चर्चा करते हुये कुछ जिज्ञासु मिलकर वदन्ति -कहते हैं।

ब्रह्मविदः- हे वेदज्ञ ऋषियों ! किं- क्या कारणं -सृष्टि रचना का कारणं ब्रह्म-ब्रह्म है। कुतः जाताः स्म- हम लोग कहाँ से उत्पन्न हुये। केन जीवाम- किससे जी रहें है। च- और क्व सम्प्रतिष्ठाः- किस में स्थित है। केन अधिष्ठिताः- किसकी व्यवस्था मे बन्धे हुये हम सुखतरेषु- सुख और दुःखों म व्यवस्थाम्- निश्चित व्यवस्था के अनुसार वर्तामहे- वरत रहे हैं।

व्याख्या- वेदों के ज्ञाता ऋषियों का क्सिी समय सत्संग हुआ वे सब वेदानुकूल ब्रह्म में आस्था रखते थे अतः इसी विषय में चर्चा होनी प्रारम्भ हो गई। उसमे ब्रह्म, जीव और प्रकृति के स्वरूप और इनका परस्पर क्या सम्बन्ध है विचार विनिमय होने लगा। यह प्रथम श्लोक में कहा है। इस सृष्टि की रचना करने वाला ब्रह्म कौन है उसका वास्तविक रूप क्या है ? इसका मूल कारण क्या है ? हम जीवात्मायें किसके आधार पर जीवित है? हम उत्पन्न होने से पहले और उत्पन्न होने पर और संसार छोडने के पश्चात् किसमें स्थित रहते है। हमारी इस प्रकार की व्यवस्था करने वाला कौन है? मुक्ति की दशा में हम किस प्रकार रहते हैं। हम ब्रह्म वादी न चाहते हुये भी किसके आधीन रहकर सुख-दुख को भोगने के लिये विवश हो जाते हैं। इस संपूर्ण व्यवस्था का मुख्य संचालक कौन है?

कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरूष इति चिन्त्यां।
संयोग एषां न त्वात्मभावादात्माप्यनीशः सुखदुःखहेतोः ।।२।।

पदार्थः- कालः- काल स्वभाव-स्वभाव- यदृच्छा-- आकश्मिक घटना नियति - संचित कर्मो का फल भूतानि - पांचों तत्व आकाश, वायु अग्नि, जल और पृथिवी। इनका मूल

कारण सत्व, रज, तम प्रकृति' पुरुष:- आत्मा - इति चिन्तय:- इस प्रकार सृष्टि रचना के कारणों पर विचार करते हैं। एषां- इन उपर्युक्त काराणो का संयोग:- समूह तो न- इस श्रृष्टि रचना का काररण नही हो सकता। आत्मभावात - ये जड़ है इनमें चेतना नहीं है। आत्मा - जीवात्मा भी अनीश:- अल्प शक्ति वाला. एक देशीय होने के कारण -न चाहते हुये भी सांसारिक .सुख- दुख भोगने वाला है।

व्याख्या - उस समय तक सृष्टि रचना के जितने भी दार्शनिक विचार प्रचलित थे क्रमश: उन पर चिन्तन किया गया ।

प्रथम- काल के विषय में सोचा कि बिना समय के तो कुछ भी नहीं हो सकता जगत की रचना और प्रलय काल के आधीन है।ऋृतुओं के अनुसार वस्तुओं की उत्पत्ति होती हैं।

दूसरा वाद है स्वभाव- जिस वस्तु में जो शक्ति है वह उसका स्वभाव है। अग्नि का स्वभाव ताप है और जल का स्वभाव शीतलता है तो क्या सृष्टि की उत्पत्ति भी स्वभाव से मानी जाय। नियति अनुसार फल भोगना- मनुष्य चाहता कुछ है और हो कुछ जाता है इसके विपरीत कहते भी हैं करनी को कौन टाल सकता है। यदृच्छा- संयोग वस यह संसार बनता और बिगड़ता रहता है।

भूतानि-पांचों तत्वों पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के संयोग से बना है। योनि- पञ्चतत्वों का मूल कारण सत्व - रज- तम रूप प्रकृति इसका कारण है।

विचारने पर ज्ञात हुआ कि ये सब जड़ है इनमें स्वत: रचना शक्ति नहीं है। बिना चेतन शक्ति के कोई रचना हो ही नहीं सकती । अचेतन सब मिल कर भी किसी प्रकार की रचना नहीं कर सकते।

आत्मा तो चेतन है किन्तु इसमें भी अल्पज्ञ तथा एक देशीय होने के कारण तथा न चाहते हुये भी इसको सुख दुख भोगने पड़ते हैं। इससे भी इन्द्रियातीत सर्वव्यापक चेतन शक्ति है जो जी वों पर नियन्त्रण रखती है तथा उनको सुख दुख का अनुमय कराती है। इस लिये निश्चित हुआ कि वही महती शक्ति ब्रह्म है जो सृष्टि की रचना और प्रलय करता है।

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्ति स्वगुणै निर्गूढ़ाम।
य: कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तन्योधितिष्ठत्येक: ।।३।।

पदार्थ :- ध्यानयोगानुगता: ते- ध्यान योग लगाकर उन ऋृषियों ने गुणै: -अपने गुणों से निर्गूढ़ाम्- ढ़की हुई देवात्मशक्तिम्- महान् देव की चेतन शक्ति को अपश्यन - देखा- जाना। य:- जो देव एक:- अकेला ही तानि- उन कालात्मयुक्तानि - काल से लेकर आत्मा तक निखिलानि- सम्पूर्णा कारणगनि अधितिष्ठति- कारणों पर शासन करता है।

व्याख्या- ऋषियों ने जब परस्पर विचार विनिमय किया और किसी एक निर्णय पर न पहुँच सके तब सबने ध्यान लगा कर योग से मन और इन्द्रियों को वाह्यविषयों से हटा कर उस परमात्मा को जानने में तत्पर हो गये और ध्यान मे उन्होंने उस देव को जगत का कर्ता - धर्ता और संहर्ता के रूप में ज्ञान चक्षुओं से जान लिया कि पहले जो काल से आत्मा तक सब वादों में कहे हुये कारणों पर नियन्त्रण उसी चेतनशक्ति का है, निर्णय हुआ कि वही सृष्टिरचना का मुख्य कारण है।

तमेकनेमिं त्रिवृतं षोऽशान्तं शतार्धारं विंशतिप्रत्यराभिः।
अष्टकैः षड्भिर्विश्वरूपैकपाशं त्रिमार्ग भेदं द्विनिमित्तैकमोहम्।।४।।

पदार्थः- तम्-उस ण्कनेमिम्-एक धुरा वाले त्रिवृतं-तीन घेरो वाले षोडशान्तं- सोलह कीलियों वाले, शतार्धारम्- पचास अरो वाले, विंशतिप्रत्यराभिः-बीस सहायक अराओं से, षड्भिः-छः अष्टकैः- आठगुने अष्टकों से युक्त, विश्वरूपैकपांशम्- अनेक रूप वाले एक पाश वाले त्रिमार्ग भेदम- मार्ग के तीन भेदों वाले, द्विनिमित्तैकमोहम् दो निमित्त और मोह रूपी एक चक्रनाभिवाले को "अयश्यन् देखा"।

व्याख्याः- उन ऋषियों ने ध्यान योग से संसार चक्र को निम्न प्रकार देखा। जगत को एक चक्र-पहिये के समान देखा। गीता में इस प्रकार का वर्णन है। "भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया" सब को यन्त्र पर चढ़ाकर घुमा रहा है। यह यन्त्र वही ब्रह्म चक्र है। पहिये की नेमि इसको नाभि या परिधि कहते हैं जिस पर पहिया घूमता है इसी प्रकार इस ब्रह्म-चक्र की नेमि प्रकृति है। पहिये पर एक लोहे का घेरा चढ़ा रहता है यह ब्रह्म चक्र भी त्रिवृत्त, अर्थात् तीन सत्व, रज, तम तीन तत्वों से घिरा है। यही प्रकृति जगत का मूल कारण है। षोडशान्तम्- गोल पहिया कई लकडी के टुकड़ों को मिलाकर बनता है- यह ब्रह्म चक्र भी १६ विकारों से बना है। प्रकृति का अन्त सोलह विकार तक ही है इससे आगे कोई विंकार नहीं होता- सांख्य शास्त्र में - मूल प्रकृतिविकृति महदाद्या- पोऽश षोडशकस्तु विकारः- पांच महाभूत पृथ्वी, जल, अग्नि, वायू और आकाश। पांच ज्ञानेन्द्रियां और पांच कर्मेन्द्रियां ये प्रकृति के विकार और एक मन ये १६ इन के जोडने से ब्रह्म चक्र बनता है। प्रश्नोपनिषद् में ६ प्रश्न में यही इस प्रकार स्पष्ट किया है "स प्राणमसृजत प्राणाच्छद्धां स्वं वायुज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं मनः" ये १६ कलाये कही जाती है। इस चक्र में ५० अरे लगे हैं। ये अरे एक ओर नेमि से और दूसरी और घेरे से जुडे रहते है। इसी प्रकार संसार चक्र में अन्तः करण की वृत्तियों के पचास भेद अरों के समान हैं। इन अरों के कारण चक्र दृढ बना रहता है। सांख्य-कारिका में ५० भेद बुद्धि के हैं। विपर्यय, अशक्ति, तुष्टि और सिद्धि तथा इनके अव्वान्तर भेद।

विपर्यय अर्थात् अज्ञान या अविद्या के तम, मोंह महामोह, तामिश्र और अन्धता

मिश्र पांच भेद हैं। तमका भाव है अनात्र्म की आत्मा समझना। जैसे मन, बुद्धि, अहंकार और पांच तन्मात्राओं की आत्मा समझना।

मोहः- आठ सिद्धियों में ही रमजाना मोह है- अणिमा, महिमा, गरिमा, लंघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व।

महामोहः- दस प्रकार का होता है। दस इन्द्रियों के विषयों को भोगने की तीव्र कामना करना ही १० महामोह है।

तामिश्रः- अपरोक्त आठ प्रकार की सिद्धियों और दस इन्द्रियों के भोग प्राप्त. न होने पर एक-एक के प्राप्त न होने पर जो कष्ट होता है, जिससे क्रोध उत्पन्न होता है यह १८ प्रकार का होता है। आधा ही लाभ अन्धतामिश्र प्राप्त कर सके और बीच में कोई बाधा आ जाये या मृत्यु ही हो जाये इससे जो हाय हाय मच जाता है वही अन्धतामिश्र कहा जाता है।

अशक्तिः- दस इन्द्रियों की शक्ति न रहना, मन की अशक्ति- ९ प्रकार की तुष्टियों का न होना मन की अशक्ति है। तुष्टि भी एक अभावात्मक और भावात्मक दो प्रकार की हैं। किसी के पास सांसारिक ऐश्वर्य नहीं परन्तु वह उसी में सन्तुष्ट है। यह अभावात्मक गुण Negative Virtue किसी के पास सम्पत्ति है वह उसको त्याग कर ही सन्तुष्ट है- भावात्मक गुण Positive Virtue कहते हैं। इन दोनों प्रकार की तुष्टियों का न होना मन की अशक्ति कहलाती है।

तुष्टिः- यह तत्व ज्ञान से, वैराग्य से रूढ़ि के कारण भाग्य से, कोई अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह- इनमें से किसी एक को जीवन का लक्ष्य बनाकर ही सन्तुष्ट है। इनका न होना ही मन की अशक्ति है।

सिहिः- यह भी आठ प्रकार की होती है-जन्म, शब्द- शास्त्र, आध्यात्मिक ज्ञांन, अधिभौतिक ज्ञान, आधिदैविक ज्ञान सत्सग और गुरु-सिद्धि। इस प्रकार इन सब को मिलाकर ब्रह्मचक्र के ५० अरे हैं।

इस चक्र में बीस प्रत्यरे - छोटे अरे होते हैं ज्ञानेन्द्रियां तथा कर्मेन्द्रियां ये दस और इनके दस विषय में सहायक अरे हैं।

चक्र को दृढ़ करने के लिये कील ठुकी रहती हैं उसी प्रकार इस ब्रह्मचक्र को दृढ़ करने के लिये ४८ कील लगी हैं। इन को छः अष्टक के नाम से कहा गया है। आठ आठ के छः जोड़े हैं जिनसे ब्रह्मचक्र निर्मित है। गीता १-४ में आठ प्रकार की प्रकृति कही गई है।

प्रकृत्यष्टकः- भूमिण्योऽनलो वायुः एंव मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना, प्रकृतिरष्टधा।

धातु- अष्टक-त्वचा, चर्म, मांस, रुधिर,मेदा,अस्थि, मज्जा और वीर्य। सिद्धि अष्टक- अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति प्राकाम्य,ईशित्व, बशित्व,मदाष्टक-तन,धन, जन,बल,ज्ञान,बुद्धि,कुल और जातिमद आते हैं। अशुभाष्टक-अशुभ सोचना, सुनना, देखना, बोलना,स्पर्श करना,कराना,होने देना,और करना। धर्माष्टक- नित्य निमित्त, देश, काल,कुल, जातीय,आपद्धर्म,अपवाद धर्म। ब्रहमचक्र में ये आठ आठ का छक्का है। चक्र में एक फांस लगी रहती है इस संसार चक्र में भी काम रुपी फांस लगी है। त्रिमार्गभेदम्- पहिया जैसे आगे,पीछे,इधर,उधर तीन मार्गों का भेदक है- उसी प्रकार यह संसार चक्र भी द्यौ, अन्तरिक्ष और पृथिवी अथवा उत्पति,स्थिति और प्रलय तीन मार्गों का भेदन करता है। द्विनिमित्त- इस चक्र के निर्माण मे दो निमित्त जीवों के पाप -पुण्य कर्मों का फल भोग और मुक्ति की प्राप्ति। चक्र में चिकनाई लगी होती है जिससे उसमें गति सरल हो जाती है, उसी प्रकार इस संसार रुपी चक्र में मोह रुपी चिकनाई लगी है जिसके कारण इसमें निरन्तर चलने की गति होती रहती है। मोह को अज्ञान माना गया है, यह अज्ञान ही संसार चक्र का मुख्य केन्द्र है। इस प्रकार संसार का एक चक्र से उपमा देकर -आगे नदी के रुप में वर्णन हैं। श्वेताश्वतरोपनिषद्

पञ्चश्रोतोऽम्बुं पञ्चयोन्युग्रवक्रां पञ्चप्राणोर्मिं पञ्चबुद्धयादिमुलाम्।
पञ्चावर्ता पञ्चदुःखाद्यवेगां पञ्चाशद्भेदां पञ्चपर्वामधीमः ।।५।।

पदार्थः- पञ्चश्रोतोऽम्वुम्- यह संसार रुपी जल पांच श्रोतों वाला है। पञ्चयोन्युग्रवक्राम्- यह भयानक और टेढ़ी -मेढ़ी चलने वाली पाञ्चस्थानों से उत्पन्न होने वाली हैं। पञ्चप्राणोर्मिम् - प्राण रुपी पाञ्च तरंगौं वाली पञ्चवुद्धयादि-मूलामु- बुद्धि-मन आदि पांच इसके उग्दम स्थान हैं। पञ्चावर्ता- पांच भवरों वाली ,पञ्चदुःखौद्यवेगाम- पाञ्च दुखों के आवेग वाली पञ्चपर्वाम- पांच पवों वाली पञ्चादशन्द्राम्-पचास भेदों वाली नद़ी को अधीमः-हम जानते हैं।

व्याख्याः- ऋृषि संसार को नदी के समान अनुभव कर रहे हैं। संसार का ज्ञान पांच ज्ञानेन्द्रियों से होता है- ये इन्द्रियां पांच सूक्ष्म भूत तन्मात्राओं रुप,रस,गन्ध,स्पर्श और शब्द से उत्पन्न होने के कारण इनको श्रोत माना गया है। क्योंकि पृथिवी,जल तेज,वायु और आकाश इन तत्वों के कारण संसार रुपी नदी के प्रवाह में उग्रता उत्पन्न होती है। इस संसार रुपी नदी में गिर जाने से नाना प्रकार के जन्म-मरण का क्लेश सहना पड़ता है। यह वक्र अर्थात् टेढ़ी - मेढ़ी छल कपट से भरी है। इस में से निकलना कठिन है। नदी में लहरें उठती है, इस ब्रह्मरुपी नदी में पाञ्चप्राण- प्राण, अपान,व्यान,उदान,समान लहरें हैं। जगत में जीवों में जो हलचल मचती है वह प्राणों के कारण ही होती है। पाञ्च ज्ञानेन्द्रियों को जो ज्ञान होता है वह मन के संयोग से होता है अतः मन को इस नदी का

मूल माना गया है। "मन एवं मनुष्याणां कारणं वन्ध मोक्षयो:" नदी में भंवरे होती है इस जगत--रुपी नदी की पाञ्च तन्मात्रायें शब्द,स्पर्श,रुप,रस और गन्ध भंवरे हैं इन्हीं में जीव फंसा रहता है। नदी के प्रवाह में वेग होता है- इसी प्रकार इस संसार रुपी नदी में जन्म,मरण,जरा, रोग तथा गर्भ के दुख इसके प्रवाह में वेग लाते हैं। पहले वर्णित चक्र के अरे ही इसके पचास भेद हैं। नदी में पर्व संगम होता है इस में अविद्या,अस्मिता,राग,द्वेष और अभिनिवेश' मृत्यु का भय ये पांच कलेश इसके पर्व हैं।

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे वृहन्ते अस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे।

पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति ।।६।।

पदार्थ:- सर्वाजीवे- सब के जीवन का सर्वसंस्थे- सब का आधार आस्मिन्- इस वृहन्ते ब्रह्मचक्र- विस्तृत ब्रह्मचक्र मुं हंस:- जीवात्मा भ्राम्यते- घुमाया जाता है। वह आत्मानम्- अपने को च-और प्रेरितारम्- सब को प्रेरित करने वाले को पृथक्- अलग मत्वा- जानकर ततः- उसके पश्चात् - तेन-उस परमात्मा से जुष्टः- मिल अर्थात् उसकी प्राप्ति कर अमृतत्वम- अमरता को एति- प्राप्त हो जाति है।

व्याख्या:- इस संसार चक्र से छूटने का उपाय वताया गया है. सभी प्राणियों के जीवन और मरण का आधार यह संसार चक्र ही है। इसी में असंख्य जीव भिन्न भिन्न योनियों में अपने कर्मफलों के कारण जन्म लेते और मरते रहते हैं। यह स्वभाव से शुद्ध,चेतन जीवात्मा हंस किसी महान चेतन शक्ति के नियन्त्रण में रह कर जन्म-मरण के रुप में चक्कर काट रहा है। जब तक वह अपने को और अपने प्रेरक उस परमात्मा को अपंनी सत्ता से पृथक नहीं समझ लेता और चक्र में बैठे यह समझता है कि मैं ही इस चक्र को घुमा रहा हुं, तब तक अहं भाव के कारण घूमता रहता है चक्र में जब योगसाधना द्वारा उसे अपने से पृथक् परम शक्ति का आभास कर लेता है जिसके कारण वह इस संसार चक्र मे घूम रहा है- तब उसका कृपापात्र वन कर उससे प्रीति कर अमर बन जाता है। यही बात कठोपनिषद द्वितीय वल्भी २३ मे बताई है। यमेवैष वृणुते तेन लभ्य:- यही मुण्डक ३,२,३ मे कही गई है। गीता में भी १८-६१,६२ श्लोक पढ़ने योग्य है। ईश्वर:सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति, भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारुढानि मायया " ६१''तमेव शरणं गच्छ,सर्वभावेन भारत, तत्प्रसादात्परां शान्ति स्थानं-प्राप्स्यसि शाश्वतम् "६२"

उद्गीथमेतत् परममं तु ब्रह्म तस्मिस्त्रयं सुप्रतिष्ठाक्षरं च।

अत्रान्त्तरं ब्रह्मविदो विदित्वा लीना ब्रह्मणि तत्पण योनिमुक्तः।।७।।

पदार्थ:- एतत्-यह उद्गीथम्- वेदमे वर्णित परम ब्रह्म- पर ब्रह्म तू ही सुप्रतिष्ठा- सर्वोत्तम आश्रय च- और अक्षरम्- अविनाशी है। तस्मिन्- उसमें त्रयम्- तीनों हैं। ब्रह्मविद:- वेद के महत्त्व को जानने वाले अत्र- यहाँ इस हृदय में अन्तरम्- उस ब्रह्म को

विदित्वा- जानकर तत्परा:- उसी में तत्पर है ब्रह्मणि - उस ब्रह्म में लीना:-लीन होकर योनि मुक्ता:- जन्म-मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं।

व्याख्या:- यह संसार चक्र ब्रह्माण्ड उदय, स्थिति और अन्त वाला है।इस ब्रह्माण्ड में प्रकृति जो सत्व, रज और तमात्मक सत्ता है। अविनाशी अपरिवर्तनशील और चेतन शक्ति को जीव तथा अखण्ड-सदा एक रस सर्व-व्यापक सर्वज्ञ चेतन शक्ति को मरब्रह्म कहते हैं। इन तीनों का वर्णन वेदों में गया है। जिन्होंने योगी बन कर उस दिव्य शक्ति के दर्शन किया-उसी को आत्मसर्मपण किया है वे उसी में लीन हो कर जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त हो परमानन्द प्राप्त करते हैं।

संयुक्तमेतत्क्षरमक्षरं च व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः।
अनीशश्चात्मा वध्यते भोक्तृ भावाज्ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।।"८"

पदार्थ:- क्षरम्-नाशवान च- अक्षरम्-अविनाशी संयुक्तम्-इन दोनों का संयुक्त रुप व्यक्ताव्यक्तं- प्रकट और अप्रकट जड़- चेतन एतत् विश्वम्-इस विश्व का ईश:-परमात्मा ही भरते- पालन पोषण करता है। आत्मा-जीवात्मा भोक्तृ भावात्-संसार के विषयों का भोग करने के कारण अनीश:-पराधीन है। अत:- वध्यते-इस में बन्ध-जाता है। देवम्-उस परम देव को ज्ञात्वा - जानकर सर्वपाशे:- सभी प्रकार के प्रकृति के बन्धनों से मुच्यते- मुक्त हो जाता है।

व्याख्या:-सत्व, रज तमात्मक प्रकृति स्थूल रुप में पृथक होने पर दिखाई नहीं देती इसी लिये इसको नाशवान् और अविनाशी कहा जाता है। जड़ और चेतन का संयोग ही यह सारा ब्रह्माण्ड है। गीता में यही भाव इस प्रकार कहा है। 'अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत'' इस व्यक्त अव्यक्त का धारण और पोषण परमात्मा ही करता है। वही सब का सञ्चालन और नियमन करता है। जीवात्मा संसारिक विषयों में फंस कर उस परम देव की ओर नहीं देखता। ईशोपनिषद में "हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितम्'' अल्प शक्ति और अल्प ज्ञान के कारण प्रकृति के मोह में फंस जाता है इस लिये वह अनीश पराधीन हो दुख भोगता है। जब ध्यान योग से उस दिव्य शक्ति ब्रह्म को जान लेता है तब सारे बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशावजा ह्येका भोक्त्ट भोग्यार्थयुक्ता।
अनन्तश्चात्मा विश्वरुपो ह्यकर्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत्"९"

पदार्थ:- ज्ञअज्ञ- सर्वज्ञ और अल्पज्ञ,ईशनीशौ-सब प्रकार से समर्थ और असमर्थ द्वौ- ये दो अजौ- अजन्मा हैं ।भोक्त्ट भोग्यार्थयुक्ता - भोगने वाले और भोज्यपदार्थों से युक्त हैं। हि- तथा एका अजा-एक अनादि इन दोनों से भिन्न त्रयं- तीसरी शक्ति आत्मा-परमात्मा अनन्त- विश्वरुप सारे संसार में व्याप्त च- और अकर्ता- कर्तापन से पृथक है।

यदा- जब कोई साधक एतत् त्रयम्- इन तीनों ईश्वर, जीव, और प्रकृति के रहस्य को विन्दते-जान लेता है। तब वन्धान मुक्त होजाता है।

व्याख्या- ऋृषियों ने अपनी ध्यान मुद्रा में ईश्वर ,जीवात्मा और प्रकृति के स्वरुप को पृथक- जानने वाला साधक उसके फल को प्राप्त कर सकता है यह स्पष्ट किया है। इस ब्रह्माण्ड में दों चेतन शक्तियां हैं। पहली शक्ति सर्वज्ञ,सर्वशक्तिमान् अद्विंतीय, सर्वव्यापक ब्रह्म और दूसरी शक्ति अल्पज्ञ, अल्पशक्ति तथा एकदेशीय जीवात्मा है अत: बहुत हैं जीवात्मा -परमात्मा एक हैं। ये दोनों अजन्मा और अविनाशी हैं। इन दो के अतिरिक्त तीसरी शक्ति है इसका मूल सत्व, रज तथा तमोगुण भी जिनके असंख्य परमाणुओं से स्थूल सृष्टि बनती है- वह भी अविनाशी है। क्यों कि परमाणुओं का कभी नाश नहीं होता।

वेद का यह त्रैतवाद है। ईशोपनिषद् जो यजुर्वेद के ४० वें अध्याय पर आधारित हैं और वेदान्त का प्रमुख सिद्धान्त है पहले ही मन्त्र में यह ईश्वर, जीव और जंगत का वर्णन किया है उसी की छाया इस मन्त्र में है। यह प्रकृति जीवों के नाना प्रकार के भोज्य पदार्थ उत्पन्न करती है। परमात्मा असीम है। निराकार है। वह संयोजक है। निराकार और आप्त काम होने से प्रकृति के भोगों से दूर रहता है। जो योग साधना द्वारा इस त्रिक के रहस्य को समझ जाता है वह सब लौकिक बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

क्षरं प्रधानममृताक्षरं हर: क्षरात्मानावीशते देव एक: ।
तस्याभिध्यानात् योजनात् तत्त्वभावाद् भूयश्चान्ते विश्वमाया निवृत्तिः । ।१० । ।

पदार्थ:- प्रधानम्-प्रधान प्रकृति क्षरम्- नाशवान है। हर:-हरने वाला "अविद्या को" ईश्वर अमृताक्षरम्- अमर और नाश रहित है। एक: देव:- एक ही देव क्षरात्मानौ- जड़ प्रकृति और जीवात्मा को ईशते- अपने शासन में रखता है। तस्य-उस ईश्वर का अभिध्यानात्- निरन्तर ध्यान करने से योजनात्- मन और बुद्धि इसी पर लगाने से च- और तत्त्वभावात्- उसी मे लीन होने की भावना से अन्ते-ज्ञान हो जाने पर विश्वमायानिवृत्ति- सांसारिक बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

व्याख्या:- जीवात्मा अल्पज्ञ होने के कारण सांसारिक परपञ्चों में फंस जाता है·जिसके कारण उसको जन्म मरण का दु:ख सहना पड़ता है- इस मन्त्र में मुक्ति का उपाय बताया है। जब सृष्टि की रचना होती है तब वह स्थूल रूप में दिखाई देती है- प्रलय होने पर स्थूल वस्तु दिखाई नहीं देती- इसी कारण इस अवस्था के कारण प्रधान प्रकृति नाशवान् कही गई है। जिसके साथ लगने से जीवात्मा का अज्ञान- अविद्या का हरण होता है। उस परमात्मा को हर कहा है। वह सांसारिक बन्धनों से मुक्त होने के कारण अमृत और नाश रहित है।

जड़ चेतन स्वरूप संसार पर उसी एक परमात्मा का शासन है। जीवात्मा: कोई

साधक योग साधना द्वारा मन और इन्द्रियों को वस में कर उसी की भक्ति में लीन हो कर जब बार-बार उसी के ध्यान में लीन रहते हुये अन्त में- उसका साक्षात्कार होने पर आत्मज्ञान हो जाने पर सांसारिक बन्धनो से मुक्त हो जाता है। इन दोनो मन्त्रों में जीवात्मा की मुक्ति का उपाय बताया गया है।

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः क्षीणै क्लेशैर्जन्म मृत्यु प्रहाणिः।
तस्याभिध्यानात् तृतीय देह भेदे विश्वैश्वर्य केवल आप्तकामः।।११।

पदार्थः- अभिध्यानात्- निरन्तर तस्य- परमात्मा का ध्यान करने से देवम्- देव परमात्मा को ज्ञात्वा- भली प्रकार जान कर सर्वपाशापहानिः- सब प्रकार के पापों का नाश हो जाता है। क्षीणैः- क्लेशैः- राग-द्वेष आदि के नष्ट होने से जन्म मृत्यु प्रहाणि-जन्म-मृत्यु का अभाव हो जाता है। देह भेद- शरीर के नष्ट होने पर तृतीय - स्वर्ग तक के विश्वैश्वर्यम्' समस्त ऐश्वर्यों को छोडकर केवल-शुद्ध आप्तकामः पूर्ण काम प्राप्त कर लेता है।

व्याख्याः- इस मन्त्र में ज्ञान और ध्यान का भेद और फल बताया गया है। ध्यान से अतुलित ऐश्वर्य और इससे सर्वोत्तम सुख मिलता है। ज्ञान से उस ऐश्वर्य और सुख का भी त्याग कर देहाभिमान से रहित हो मुक्त हो जाता है। साधक दिव्य शक्तियों के केन्द्र उस देव परमात्मा को जब ध्यानावास्थित हो जान जाता है। तब पांचों क्लेश- अविद्या,अस्मिता, राग द्वेष और अभिनिवेश मृत्यु दुख इनसे छूट जाने पर जन्म मृत्यु के भय से मुक्त हो जाता है। इसका फल होता है कि शरीर त्यागते समय जीवात्मा सभी प्रकार की कामनाओं को पूरा करता हुआ एक मात्र अपनी ही सत्ता के आधार पर सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो उस दिव्य धाम आनन्द मय परमात्मा के लोक में पहुँच कर उसी मे तन्मय हो जाता है।

एतज् ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं हि किंचित्।
भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्व प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत्।।१२।।

पदार्थः- एतत्:- इस ब्रह्म को एव- ही आत्मसंस्थम्- अपने अन्दर स्थित ज्ञेयं- जानना चाहिये। हि-क्यों कि अतः परम्- इससे बढ़कर भिन्न किश्चित्- कुछ भी न वेदित व्यम्- जानने योग्य नहीं है। भोक्ता-जीवात्मा भोग्यम्- जड़ प्रकृति च-और प्रेरितारम्- इन दोनों को प्रेरित करने वाला परमेश्वर मत्वा- इन तीनों के स्वरूप को जान कर। सर्वम्-सब कुछ जान लेता है। एतत्- इस प्रकार त्रिविधम्-तीन रूपों में प्रोक्तम्- कहा हुआ ही ब्रह्म है।

व्याख्याः- "ब्रह्म" महानता के तीन रूपों का वर्णन स्पष्ट रूप से किया गया है। वह

परमात्मा नित्य है सर्वव्यापक है उसको पाने के लिये कहीं दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। वह तो आत्मा के अन्दर ही स्थित है। "ईशावास्यमिदं सर्वम्" इसी को सदा जानने का प्रयास मानव को करना चाहिये। क्योंकि उस महान ब्रह्म से बढ़कर और कुछ भी नहीं है। इस एक महान का ज्ञान हो जाने पर अन्य सब कुछ का ज्ञान हो जाता है। जीवात्मा वाला मनुष्य तो भोक्ता है। प्रकृति जड़ पदार्थ उसके खाने की वस्तु है। इन दोनों जीवात्मा और प्रकृति प्रेरक उनका संचालन करने तथा उनको नियम में रखने वाला महान ब्रह्म ही है। जिस जिस साधक ने इस त्रेत को तथा इनमें सबसे बड़े सनातन -सर्वव्यापक सत्ता को जान लिया आध्यात्मक विद्या का पूरा ज्ञान हो जाता है इस सम्बन्ध में उसके लिये और जानना शेष नहीं रहता।

"तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषांशान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्।।

(कठ उ. २/२/१२ में कहा है)

शिवमात्मनि पश्यन्ति प्रतिमासु न योगिनः" योगी जन उस शिव को अपने आत्मा के अन्दर देखते हैं- जड़ मूर्तियों में नहीं। (शिवधर्मोत्तर)

वह्नेर्यथा योनिगतस्य मूर्तिर्न दृश्यते नैव च लिंगनाशः।

स भूय एवेन्धनयोनिगृह्यस्त द्वोभय वै प्रणवेन देहे।।१३।।

पदार्थः- यथा- जिस प्रकार योनिगतस्य-अपने आश्रम भूत काष्ठ में विद्यमान वह्ने- अग्नि का मूर्ति- रूप न दृश्यते- नहीं दिखाई देता है। च- और तस्य लिंगनाशः- उसकी सत्ता का नाश भी नहीं होता। सः- वह अग्नि भूय- फिर इन्धनयोनिगृह्य- लकड़ियों में पाया जा सकता है। वा-उसी प्रकार तत् उभयम्- वे दोनों "जीवात्मा और परमात्मा" देहे- शरीर में- निश्चय ही प्रणवेन- ओंकार के द्वारा गृह्यते-ग्रहण किया जाता है।

व्याख्याः- एक मात्र ओम् के निरन्तर जाप से उस परमात्मा की प्राप्ति की जा सकती है। जिस प्रकार अग्नि अरणि इन्धन के अन्दर रहती हुई प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं देती तो उसका भाव यह नहीं होता कि वह है ही नहीं उसकी सत्ता इन्धन के अन्दर रहती है क्योंकि जब अग्नि को प्रत्यक्ष करना होता है तो इन्धन को रगड़ कर उसके अन्दर छिपी अग्नि को प्रकट किया जाता है। उसी प्रकार इस शरीर में तथा शरीर के अन्दर हृदय में अन्तर्हित नित्य निराकार चेतन स्वरूप आत्मा और परमात्मा को "ओम्" इसी को प्रणव भी कहते हैं इस भगवान के सर्व श्रेष्ठ नाम ओइम् के जाप से परमात्मा की असंख्य शक्तियों का ज्ञान साधक को प्राप्त हो जाता है। प्रश्नोयनिषद् में- ओमित्ये तेनेपाक्षरेण परं पुरूषमभिध्यायति" श्रुति में - ओमित्यात्मानं ध्यायति" प्रणव को आत्म चिन्तन के अंग

रूप में दिखाया गया है।

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद्देवं पश्येन्निगूढ़वत्।।१४।।

पदार्थ:- स्वदेहम्- साधक अपने शरीर को अरणी कृत्वा- नीचे की अरणी और प्रणवम्- ओम् को उत्तरणीम् - ऊपर की अरणी बनाकर । ध्याननिमर्थनाभ्यासात्- ध्यान के द्वारा निरन्तर मथन के अभ्यास से निगूढ़वत्- छिपे हुए हृदय में स्थित देवं- उस परमात्मा को पश्येत्- देखे।

व्याख्या:- ओम् के निरन्तर जाप से साधक हृदय में स्थित उस परम देव के दर्शन पा सकते हैं। जिस प्रकार बड़े बड़े यज्ञों में दो- अरणियों द्वारा - एक नीचे की अरणी जो स्थिर रहती है। और दूसरी ऊपर की अरणी जिससे बार बार नीचे की अरणी से रगड़ा जाता है- इस प्रकार करने से अरणी के अन्दर छिपी अग्नि प्रत्यक्ष हो जाती है। उसी प्रकार साधक अपने शरीर को साधकर स्थिर कर प्रणव "परम देव के उत्तम ओम् नाम को ऊपर की अरणी के समान निरन्तर जाप करने रूप मथन के ध्यान रूपी बार बार अभ्यास से शरीर के हृदयाकाश में स्थित उस परम देव की परमात्मा रूपी तेज स्वरूप ब्रह्मको देख सकता है। ईश्वर सर्व भूतानां हृद्देशे प्रतिष्ठितम्" गीता में यही भाव है।

तिलेषु तैलं दधनीव सर्पिराप: स्त्रोत: स्वरणीषु चाग्नि:।
एवमात्माऽऽत्मनि गृह्यतेऽसौ सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति।।१५।।

पदार्थ:- तिलेषु- तिलों में तैलम्- तेल दधनि-दही में सर्पि: घी स्त्रोत:सु- सोतों में आप:- जल अरणीषु- अरणीयों में अग्नि:- आग इव- की भांति एवम्- उसी प्रकार असौ- वह आत्मा परमात्मा आत्मनि- अपनी आत्मा के अन्दर छिपा हुआ है। य: एवम्- जो साधक इस ब्रह्म को सत्येन त पसा च- सत्य तथा यम नियम के तप- संयम से अनुपश्यति- देखता रहता है चिन्तन करता रहता है। गृह्यते- ऐसे साधक द्वारा वह प्राप्त किया जाता है।

व्याख्या:- इस मन्त्र में अनेक प्रकार के उदाहरण देकर पहले प्रकरण को समझाया गया है।

जैसे- तिलों के अन्दर तेल, दही में घी, सूखी नदी के अन्दर जल तथा अरणियों लकडियों में अग्नि छिपी हुई रहती है, तथा उन छिपी हुई वस्तुओं को विभिन्न प्रकार के उपायों से निकालकर प्रयोग में लाया जाते हैं। उसी प्रकार प्रत्येक के हृदय गुफा में छिपे प्रत्यक्ष न दिखाई देने वाले पर ब्रह्म को कोई साधक सांसारिक विषय वासनाओं से रहित, सत्यभाषण और सद्व्यवहार संयम से तपस्या करते हुए निरन्तर उस ब्रह्म का चिन्तन करता हो तो वही साधक उसके स्वरूप को प्राप्त कर सकता है। सत्यं भूतहितं प्रोक्तम्"

जो सबके लिये हितकर हो वही सत्य है। मनसश्चेन्द्रियाणां च एकाग्रता परम तपः। मन और इन्द्रियों की एकाग्रता ही परम तप है। अतः सत्य और तप के बिना कोई उस सच्चिदानन्द के आनन्द रूप को नहीं पा सकता।

सर्वव्यापिनमात्मानं क्षीरे सर्पिरिवार्पितम्।
आत्मविद्यातपोभूलं तद् ब्रह्मोपनिषत्परम्, तद् ब्रह्मोपनिषत्परम् ।।१६।।

पदार्थः- क्षीरे- दूध मे अर्पितम्- स्थित सर्पिः इव- घी की भांति सर्वव्यापिनम्- सर्वत्र व्यापक आत्मविद्यातपोमूलम्- आध्यात्मिक विद्या और तप के द्वारा प्राप्त होने योग्य आत्मानम्-पर ब्रह्म को साधक जान लेता है। तत्-वह बात उपनिषत्-उपनिषद् में बताया हुआ परम्- सर्वोत्तम तत्व ब्रह्म-ब्रह्म है। तत् उपनिषत् परम् ब्रह्म। वह उपंनिषद् में बताया ब्रह्म है।

व्याख्याः- आत्मज्ञानी योगी अपनी योग साधना से उस ब्रह्म को किस प्रकार अनुभव करता है यह इस अन्तिम मन्त्र में बताया गया है। जिस प्रकार दूध के कण-कण में घी समाया रहता है उसी प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के जड़ और चेतन को अपनी सत्ता से रमा हुआ हैं । जिसको प्राप्त करने का मूल साधन आत्मविद्या और तप है। श्रुति भी कहती है "सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्। न एषु जिह्ममनृतं न माया च" प्र.उ. " यह परमात्मा सदा सत्य तप, सम्यग्ज्ञान और ब्रह्मचर्य की कठिन तप द्वारा पाया जा सकता है। जिस व्यक्ति में कुटिलता, असत्य और छल कपट होता है वह उसको कभी भी नही पा सकता। यह ब्रह्मज्ञान ही उपनिषद् का सार है। यह ब्रह्मज्ञान ही उपनिषद का सार है।

अन्त में जो एक वाक्य दो बार लिखा गया है- इसका भाव है यह अध्याय यहीं समाप्त हो गया ।

अन्यत्र "विद्ययामृतमश्नुते" ई.उ. - तपसा ब्रह्म विजिज्ञासव" तेव्उ. ज्ञान से अमृत की प्राप्ति होती है तप से ब्रह्म को जानने की इच्छा करो।

" इति प्रथम अध्याय समाप्त"

अथ द्वितीय अध्याय

पहले अध्याय में ध्यान द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार बताया गया इसमें ध्यान की प्रकृया बताई गई है।

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वा य सविता धियः ।।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत।।१।।

पदार्थः- सविता- परमात्मा प्रथमम्-पहले मनः- हमारे मन और धियः बुद्धियों को तत्वाय-तत्व प्राप्ति के लिये युञ्जानः- अपने में लगाते हुऐ अग्नेः- अग्नि आदि की ज्योतिः -ज्योति को निचाय्य- देखते हुये पृथिव्याः- लौकिक पदार्थों से अधि-ऊपर उठाकर आभरत- स्थापित करे

व्याख्याः- इस मन्त्र में श्रृष्टि की उत्पत्ति का क्रम संक्षेप में किया गया है- प्रकृति-मूल प्रकृति सत्व, रज और तम की साम्य अवस्था। उससे प्रकृतेर्महान्- महत् तत्व बुद्धि। इसके पश्चात उत्पति की श्रृंखला बढ़ती गई मनस्-तत्व आगे ज्योति के लिये अग्नि हुई और अन्त में पञ्चतत्वों से युक्त पृथ्वी बनी। इस सृष्टि क्रम का चलाने वाला वह परमात्मा है अतः उसको सविता शब्द से पुकारा गया और उसी से प्रार्थना की गई है। जिसमें देने की शक्ति है उसी से याचना की जा सकती है सर्वशक्तिमान परमात्मा से जीवात्मा उस तत्व की प्राप्ति के लिये प्रार्थना करता है। प्रकृति जीवात्मा के लिये बनी कर्म जीवात्मा को करना है। परमात्मा प्रेरक और दृष्टा है। उस दिव्य प्रकाश की प्राप्ति के लिये जीवात्मा को चाहिये कि वह अपने मन की चंचल वृत्तियों को शान्रा कर उसको शुभ संकल्पों की ओर जगावे "तत मे मनः शिवसंकल्पमस्तु। जब मन शुभ संकल्प वाला हो जाये तब अपनी मेधा बुद्धि को सत्यज्ञान की ओर लगावे अर्थात् भौतिक पदार्थों का चिन्तन छोड़ सूक्ष्म विषयों की ओर लगावे आध्यात्मिकता की ओर ले जायें तत्पश्चात् उस सविता के दिव्य प्रकाश की ओर लगाने का प्रयास कर हृदयस्थ बृह्माग्नि को प्रज्वलित करने का प्रयास करे।जिससे ज्ञानेद्रियों का प्रकाश बृाह्य जगत से हट कर आन्तरिक जगत की ओर ही लगे। यह ध्यान की प्रथम सीढ़ी बताई गई है। इससे मन और बुद्धि की स्थिरता होती है।

" योगः चित्तवृत्ति निरोधः" चित्तवृत्तियों को रोकना योग है।

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे, सुवर्गेयाय शक्त्या ।।२।।

पदार्थः- वयम्- हम सवितु :- सबको उत्पन्न करने वाले देवस्य- परमेश्वर की सवे- आराधना में युक्तेनमनसा- उसमे लगे हुये मन से सुवर्गेयाय- स्वर्गीय आनन्द प्राप्ति के

लिये शक्त्या- अपनी पूरी शक्ति से प्रयत्न करें।

व्याख्या:- जब चित्तवृतियों पर पूरा नियन्त्रण हो जाय मन आत्मा के वशीभूत बन जाय तब उस दिव्य प्रकाश देने वाले परमात्मा देव के इस सारभूत सुन्दर स्टष्टि में अनाशक्त हो, उस परमात्मा के स्वर्गीय आनन्द को प्राप्त करने में लग जाय। जैसे उस सविता ने क्रमश: स्टष्टिक्रम को प्रकट किया उसी प्रकार साधक अपने को क्रमश शरीर ,प्राण,मन आदि पर पूर्ण संयम रख कर उस परम आनन्द को पाने के लिये प्रयत्न करें।

युँक्त्वाय मनसा देवान् सुवर्यतो धिया दिवम्।
बृहज्ज्योति: करिष्यात: सविता प्रसुवाति तान्।।३।।

पदार्थ- सविता- सब को उत्पन्न करने वाले सुव:- पूर्ण आनन्द स्वरुप ब्रह्म के प्रति यत:- जाती हुई दिवम-चैतन्यस्वरुप बृहत्- बड़ा ज्योति:- प्रकाश करिष्यत:- करने वाली तान्- उन देवान्- इन्द्रियों को मनसा-धिया- मन और बुद्धि से युक्त्वाय- उस परमानन्द से मिलाने के लिये प्रसुवाति- प्रेरणा करे।

व्याख्या:- उस सविता देव से साधक प्रार्थना करता है कि मेरी इन्द्रियां सांसारिक सुखों की ओर न भागने पावें अत: उनको ध्यान योग के द्वारा आन्तरिक प्रकाश को प्राप्त करने के लिये इतना प्रयास करे कि उस दिव्य ज्योति के प्रकाश में मन और इन्द्रियां लीन हो जाये। इस प्रकार की सामर्थ्य साविता देव प्रदान करे। विचारों को कार्य रुप में लाने का प्रयास तो साधक ही करेगा। इसी लिये प्रार्थना की जाती है दिव्य शक्ति के साथ सम्पर्क करके ही उसका प्रकाश प्राप्त किया जा सकता है। पुन: प्रार्थना की गई है।

युञ्जते मन उतं युञ्जेत धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चित:।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितु: परिष्टुति: ।।४।।

पदार्थ:- विप्रा: ज्ञानी जन मन: उत धिय:- मन और बुद्धि की वृत्तियों को युञ्जते लगाते हैं। होत्रा: विदधे- जिसने सब यज्ञ आदि शुभ कर्मो का विधान किया है। वयुनावित- सम्पूर्ण जगत् को जानने वाला एक:- एक है। बृहत: विप्रस्द्र- उस महान् व्यापक विपश्चित:- सर्वज्ञ.सवितु:- सब को उत्पन्न करने वाले देवस्य- परमेश्वर की इत्-निश्चय ही मही- महती परिष्टुति:- स्तुति करनी चाहिये।

व्याख्या:- ज्ञानी जनों को चाहिये कि मन के सहित बुद्धि को स्थिर करके-बुद्धि को यहाँ धी शब्द से कहा गया है। इन्द्रियों की उत्पत्ति बुद्धि से मानी गई है कठोपनिषद् में २/३/१० में " यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह" जब मन के साथ पाञ्चों ज्ञानेन्द्रियां रूक जाती है।" विशेष रूप से जिस सर्वशक्तिमान् ने सभी प्रकार के यज्ञो का विधान किया जो सब प्रकार की गतिविधियों का जानने वाला है वह परम देवता अद्वितीय है उसकी समानता करने वाला दूसरा कोई नहीं है। ज्ञानी जनो को उसी एक

की उपासना श्रद्धापूर्वक करनी चाहिये। इसी मे सबका कल्याण है।

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्विश्लोक एतु पश्येव सूरेः।

ऋण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्याति तस्थुः।।५।।

पदार्थः- वाम्-तुम दोनों के पूर्व्य- सबसे पहले ब्रह्म-परमात्मा से न मोभिः- नमस्कारों द्वारा युजे- युक्त होता हूँ। श्लोक- मेरी यह स्तुति सूरेः पथ्या इव- श्रेष्ठ विद्वान की कीर्ति के समान व्येतु- चारों ओर फैल जाये। अमृतस्य अविनासी परमात्मा के विश्वे-सब पुत्राः-पुत्र ये- जो दिव्यानि धामानि- दिव्य लोकों में आ तस्थुः- निवास करते हैं श्रृण्वन्तु-सुनें।।

व्याख्याः- इसमें अध्यात्मविद्या के शिक्षक और शिष्यों को उपदेश दिया गया है तुम यह भली भांति समझ जाओ कि तुम उस सर्वव्यापक निराकार के पुत्र हो। तुम्हारा लक्ष्य स्वर्गीय सुख पाना है। ज्ञानी तथा योगी जनों की भाँति तुम बार बार विनयपूर्वक हृदय से नमस्कार करते हुये उस परम पिता की शरण में जाओ। मेरी की हुई स्तुति सर्वत्र उसी प्रकार फैल जाये जिस प्रकार विद्वान योगी जनो की कीर्ति सब जगह फैल जाती है। तुम तपस्वी लोगों के कुलों में जन्म पाते हुये निरन्तर कल्याण मार्ग पर चलते हुये दिव्य धाम के आनन्द पाने वाले हो जाओ।

जो साधक यम नियम के बिना ही योग की ओर गति करता है उसकी प्रवृति केवल सांसारिक भोगों को भोगने में लगी रहती है। इस बात को अगले मन्त्र में स्पष्ट कियाँ गया है।

अग्निर्यत्रामिथ्येत वायुर्यत्राधिरूध्यते।

सोमो यत्रातिरिच्यते तत्र संजायते मनः।।६।।

पदार्थः- यत्र-जिस दशा में अग्निम्- अग्नि रूप ब्रह्म को अमिथ्यते- प्रणव के द्वारा मथा जाता है। यत्र- जिस स्थिति में वायुः अधिरूध्यते- प्राणायाम द्वारा वायु का अच्छी प्रकार निरोध किया जाता है। यत्र- जहाँ सोम अतिरिच्यते- आनन्द स्वरूप सोम रस अधिकता से प्रकट होता है। तत्र-उस स्थिति में मनः संजायते- मन शुद्ध हो जाता है। इस मन्त्र में अग्नि शब्द का लौकिक अर्थ में यज्ञ कार्य लिया गया है। दूसरा अग्नि का अर्थ परमात्मा का है। "अविधातत्कार्मस्य दाहकत्वात्" जिस परम देव की संगति से अविद्या तथा उसके अन्य कारण दग्ध हो जाते हैं।

जिस प्रकार सोम यज्ञ करने के लिये दो अरणियों को परस्पर मथने से अग्नि प्रकट हो जाती है उसी प्रकार निरन्तर प्रणव ओम् के जप के अभ्यास से चिन्तन रूप मथन किया जाता है। जिस स्थिति में प्राणायाम के द्वारा प्राणा वायु को प्रबल बनाया जाता है। जिस योग द्वारा आनन्द रूप सोम रस की अधिकता हो जाती है। ऐसी साधना में

साधक का मन शुद्ध हो जाता है। मनः एव मनुष्याणां कारणां बन्ध-मोक्षयों" मन की शुद्धि मोक्ष का कारण है अन्यथा सांसारिक जन्म मरण के फन्दे में फंसता रहता है। उस परमात्मा के आनन्द स्वरूप का आनन्द लेना ही सोमरस है। सोमरस वर्तमान में अज्ञानी जन शराब को मानते हैं। जो अध्यात्म से भिन्न है। कबीर दास ने इसी रस का अजररसझरे नाम दिया है।

सवित्रा प्रसवेन जुषेत ब्रह्म पूर्व्यम्।
तत्र योनिं कृणवसे न हि ते पूर्वमक्षिपत्।।७।।

पदार्थः- सवित्राः-सबको उत्पन्न करने वाले के द्वारा प्रसवेन- प्रेरणा से पूर्व्यम् ब्रह्म **जुषेत**- आदि कारण ब्रह्म की आराधना करनी चाहिए। तत्र- उस परमात्मा में योनि **कृणवसे**- आश्रय प्राप्त कर। हि- क्यों कि इस प्रकार से तेरे- साधक के पूर्वम्-पूर्व संचित **कर्म** न अक्षिषत्-विघ्न कारक नहीं होंगे।

व्याख्याः- पहले मन्त्र में यज्ञादि, प्राणायाम, समाधि के साधनों से उस ब्रह्म की प्राप्ति की जाती है। उस सविता के द्वारा उत्पन्न सृष्टि के अन्न आदि भोग्य पदार्थों को उत्पन्न करने वाले को समझकर चिरन्तन ब्रह्म की आराधना करनी चाहिये ऐसा न करने पर भोग के कारण कर्मों की ओर ही प्रवृत्ति होगी। मुक्ति की ओर नहीं। अतः उसी ब्रह्म में समाधिष्ठ होने का प्रयत्न करना चाहिये ऐसा करने से न हि ते पूर्वमक्षियत्" इस प्रकार निरन्तर साधना द्वारा मानव के कर्म बन्धन कट जाते हैं। अर्थात् उसको जन्म-मृत्यू के बन्धन से मुक्ति मिल जाती है। जो उस प्रभु से अपना सम्बन्ध नहीं जोडता वह उसी प्रकार गिर जाता है जैसे पूर्ण प्रसव से पहले बच्चा गिर जाता है। ज्ञान प्राप्त हो जाने पर जैसे अग्नि में तपा कर स्वर्ण का मैल भस्म हो जाता है इसी प्रकार साधक के सब पाप कर्म भस्म हो जाते हैं। गीता में इसी बात को योगी राज कृष्ण जी ने कहा है। ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्ममात्कृरूते तथा। गी.४-३७।।

ध्यान किस प्रकार लगाना चाहिये यह बताया गया है।

त्रिरून्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा संनिवेश्य।
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान् स्त्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि।।८।।

पदार्थः- विद्वान्- साधक को चाहिये कि त्रिरून्नतम्-तीन सिर, गला और छाती को उभार कर शरीरम्- शरीर को समम् स्थाप्य-सीधा स्थिर करके इन्द्रियाणि- समस्त इन्द्रियों को मनसा - मन के द्वारा हृदि- हृदय में संनिवेश्य- एकाग्र करके ब्रह्मोडुपेन-प्रणवरूपी नोका से सर्वाणि-सब प्रकार के भयावहानि- भयंकर स्त्रोतांसि-जल प्रवाहैं को प्रतरेत- पार कर जाये।

व्याख्याः- समाधि किस प्रकार लगानी चाहिये इस का प्रकार बताते हैं। प्राणायाम की

विधि:- सिर,गला और छाती को ऊपर रखते हुये शरीर को स्थिर करें। इस प्रकार आसन लगाने से आलस्य आदि नहीं आते। इसके पश्चात मन के द्वारा ज्ञानेन्द्रियों को हृदय में नियमित कर प्रणव "ओम्" जाप रूपी नौका से अर्थात् काकाक्षिन्याय से जिस प्रकार कौवे के गोलक तो दो हैं किन्तु देखने की आँख एक ही होती है इसी प्रकार ब्रह्म नाम विद्वान ओम् को ही मानते हैं इस जाप द्वारा मन और इन्द्रियों को हृदय में नियमित कर इस नौका के द्वारा साधक संसार रूपी अविद्या, कामना और कर्मों द्वारा होने वाले भयंकर प्रवाह अर्थात् अधोयोनियों में जन्म लेने का प्रवाह को पार कर लेता है। इस दैवी नौका में बैठ कर यात्रा करने वाले साधक को सांसारिक लुभाने वाले धन, सम्पत्ति ऐश्वर्य- और प्रतिष्ठा आदि पतित नहीं कर सकते। प्राणायाम के द्वारा चित्त की शुद्धि होती है। जिसने अपनी चितवृत्ति को शुद्ध कर दिया वही परमात्मा का साक्षात्कार कर सकता है। योगदर्शन का प्रथम सूत्र "चित्तवृत्ति निरोध: योग:" है।

"प्रणायामविशुद्धात्मा यस्मात्पश्यति तत्परम्।
तस्मान्नात: पर किञ्चित्प्राणायामादिति श्रुति:।।
प्राणान्प्रपीड्यिह संयुक्तचेष्ट: क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत
दुष्ट्राश्वयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान्मनो धारयेताप्रमत्त:।।९।।

पदार्थ:- विद्वान्-साधक इह- इस साधना में संयुक्तचेष्टा:-समस्त चेष्टाओं को करते हुये प्राणान् प्रपीडय- अच्छी प्रकार प्राणायाम करके प्राणो क्षीणे-प्राणो के अतिसूक्ष्म होने पर नासिकया- नाक से इच्छवसीत- बाहर निकाल दे। दुष्टाश्वयुक्तम्- दुष्ट घोड़ों से मुक्त वाहम् इव- रथ के समान एनम्- इस मंन:-मन के अप्रमत्त:-सावधान होकर धारयेत-वश मे करे।

व्याख्या:- साधक को प्रथम अपना सात्विक आहार पर ध्यान देना उचित है। आहार शुद्धि से मन शुद्ध होता है। इसी लिये मद्य मांसादि-चटपटे भोजन का त्याग करना आवश्यकीय है। इस प्रकार के भोजन से साधना में बाधा नहीं होती। तब प्राणायाम का अभ्यास करें प्राणों का अन्दर यथा शक्ति रोकने का प्रयत्न करें जब अन्दर रोकने में असमर्थ हो जाये तब नासिका द्वारा बाहर निकाल दें। इसके पश्चात सांधक पुन: जैसे एक चतुर सारथी बिगडे हुये घोडों वाले रथ को सावधानी से अपने नियत स्थान पर ले जाता है उसी प्रकार साधक अपने मन को वश में करके परमात्मा प्राप्ति रूप लक्ष्य पर पहुँच जाय।

गीता के ६ अध्याय १, श्लोक में यही बात स्पष्ट की गई है-

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नाववोधस्य योगी भवति दु:खहा।।

यह है आहार-विहार की चेष्टा।

अब साधना करने के स्थान का वर्णन किया जा रहा है।

समे शुचौ शर्करावह्निवालु काविवर्जिते शब्द जलाश्रयादिभिः।
मनोऽनुकूले न तु चक्षुपीऽने गुहानिवाताश्रयणो प्रयोजयेत्।।१०।।

पदार्थः- समे शुचौ- समतल और शुद्ध शर्करावहिवालुकाविवर्जिति-कंकड़, आग, रेत रहित शब्दजलाश्रयादिभिः-शब्द जल तथा आश्रम की दृष्टि से अनुकूल और न चक्षुपीडने-नेत्रो की पीड़ा न पहुँचाने वाले गुहानिवाताश्रयणे- गुफा आदि निर्वात स्थान में मनः- मन को प्रयोजवत्-ध्यान में लगाने का प्रयास करना चाहिये।

व्याख्याः- ध्यान लगाने का स्थान समतल अर्थात् न ऊँचा हो न नीचा हो। स्वच्छ कूड़ा करकट से रहित जहाँ अग्नि और धूप का तेज प्रवाह न हो कंकण पत्थरों से रहित, शब्द भीड़भड़ाके का कोलाहल ने हो आवश्यक जल प्राप्त हो परन्तु सार्वजनिक जलाशय जिसमें स्नानार्थी की भीड़ न हो शरीर रक्षा हेतू उचित स्थान हो बहुत लोगों के आने-जाने का ज़लाशय या धर्मशाला न हो जहाँ बैठकर नेत्रों को भयानक दृश्य न दिखाई दे अर्थात् कोई ऐसा दृश्य न दिखाई दे जिससे ध्यान में बाधा पड़े चक्षु पीड़ने-वैदिक रूप में ".चक्षुः" विसर्ग नहीं रहते। इस प्रकार शान्त- वायु रहित एकान्त गुफा आदि स्थान पर ध्यानावस्थित हो मन को उस ब्रह्म को प्राप्त करने का अभ्यास करें।

उपनिषद् के इसी भाव को गीता के अध्याय "शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य" ११ से १५ तक वर्णन किया गया है।

नीहारधूमार्कानिलानलानां खद्योत्विद्युत्स्फटिक शशीनाम्।
एतानि रूपाणि पुरः सराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे।।११।।

पदार्थः- ब्रह्मणि योग-ब्रह्म प्राप्ति के योग में नीहारघूमाकानिल-कुहरा, धुंआ, सूर्य, वायु और अग्नि तथा रवधोत०- जुगनू, बिजली, मणि, और चन्द्रमा के समान रूपाणि पुरः सराणि- अनेकों रूप योगी के सामने प्रकट भवन्ति- होते हैं। एतानि- ये सब अभिव्यक्तिकराणि- योगी की सफलता को स्पष्ट रूप से प्रकट करने वाले हैं।

व्याख्याः- योग सिद्धि के पूर्व लक्षण बताये गये हैं। योग करते करते प्रारम्भ काल में योगी को अभ्यास काल में मनोवृत्ति के सामने कुहरा सा छा जाता है। पुनः धुंआ सा सूर्य सा प्रकाश तब वायु सा तब अग्नि के समान उष्ण और प्रकाश के समान दाहक प्रतीत होने लगता है वायु के समान अत्यन्त क्षुभित करने वाला प्रतीत होता है। कभी जुगनुंओं से चमचमाता आकाश, कभी बिजली के समान तेज फैलने वाली वस्तु दिखाई देती है, कभी स्फटिक मणि का आकार दिखाई देता है। तो कभी चन्द्रमा का प्रकाश दिखाई देने लगता है। प्रायः दिव्य ज्योति के दर्शन से पूर्व इस प्रकार के छोटे छोटे प्रकाश दिखाई देता है।

साधक को इतने से ही शान्त नहीं होना चाहिये। इससे दिव्य प्रकाश की प्राप्ति साधक को हो जाती है। इस प्रकार के अनुभव से साधक की सफलता अनुभव होने लगती है।

पृथ्व्यप्तेजोऽ निलखे समुत्थिते पञ्चात्मके योगगुणें प्रवृत्ते।
न तस्य रोगो न जरा मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्।।१२।।

पदार्थः- पृथ्व्यप्ते जोऽ निकलखे- पृथ्वी, जल तेज, वायु और आकाश पंच महाभूतों का समुत्थिते- उत्पन्न होने पर पञ्चात्मके- योगगुणो प्रवृत्त-पाञ्च प्रकार के योगसम्बन्धी गुणों की सिद्धि हो जाने पर। योगाग्निमयम् शरीरम्- योगाग्निमय शरीर को प्राप्तस्य-प्राप्त करने वाले साधक को न रोगः न जरा न मृत्युः- न रोग न बुढ़ापा और न मृत्यु ही होती है।

व्याख्याः- इस मन्त्र में योग का फल कब प्राप्त होता है। पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश इन पञ्च तत्वों से बने नासिका, जीव, नेत्र, कान ओर त्वगेन्द्रियां जब अंपने विषय गन्ध,रूप, शब्द और स्पर्श से ऊपर उठ जाता है तथा योग साधना का गुण "योगः चित्तवृत्ति निरोधः" चित्त की वृतियों को निरोध होने लगता है साधक इस साधना से जब योग अग्नि से तेजोमय देदीप्यमान शरीर वाला हो जाता है तब उसको किसी प्रकार का रोग, वृद्धावस्था की दुर्बलता नहीं सताती इतना ही नहीं मृत्यु का भय उसको नहीं होता निर्भय हो जाता है।

लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णं प्रसादं स्वरसौष्ठवं च।
गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति।।१३।।

पदार्थः- लघुत्वम्- शरीर मे हल्कापन, आरोग्यम्- रोग न होना, अलोलुपत्वम्- विषयासक्ति न होना, वर्णप्रसादम्- शरीर का तेजामय होना, स्वरसौष्ठवम्- मधुर वाणी शुभःगन्धः- शरीर सुगन्धित होना और मूत्रपुरीषम् अल्पम्- मल मूत्र का कम होना प्रथमाम्- योग की पहली सिद्धि, वदन्ति- कहते हैं।

व्याख्याः- योगी के प्रथम लक्षण बताये गये हैं। योगी जनों ने अपने अनुभव बताये है। पञ्च भौतिक तत्वों पर नियन्त्रण कर लेने के पश्चात् अन्य शक्तियां आ जाती हैं। शरीर में हल्का पन अर्थात् आलस्य का भय नही होता कभी किसी प्रकार का रोग नहीं होता। सांसारिक पदार्थो का उसको जरा भी लोभ नही रहता, कोई भी वस्तु उसको आकर्षित नहीं कर सकती उसके शरीर का वर्ण उज्वल हो जाता है मधुर वाणी और शरीर से सुगन्ध निकलने लगती है। मल मूत्र की कमी हो जाती है। ये सब योग मार्ग की सिद्धियां हैं ऐसा योगी जन कहते हैं। योगी की चार प्रवृत्तियां कहीं गई हैं "ज्योतिष्मती, स्पर्शवती, रसवती और गन्धवती इसमें किसी एक की भी प्रवृत्ति हो जाये तो उसको योग में प्रवृत्त मानते हैं।

यथैव विम्वं मृद्योपलिप्तं तेजोमयं भ्राजते तत्सुधान्तम्।
तद्वाऽऽत्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य देही एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः।।१४।।

पदार्थः- यथा-जैसे, मृदया- मिट्टी से उपलिप्तम्- मलिन हुआ जो, तेजो मयम्- प्रकाश युक्त विम्वम्-वस्तु रत्न आदि तत् एव- वही सुधान्तम्- धुल जाने पर भ्राजते- चमकता है तत् वा- उसी प्रकार देही-जीवात्मा आत्मतत्त्वम्-शुद्ध आत्म तत्व को प्रसमीक्ष्य- भली प्रकार प्रत्यक्ष करके एकः- अकेला वीतशोकः-सब दुखों से रहित तथा कृतार्थ भवते- कृतार्थ हो जाता है।

व्याख्याः- योग सिद्धि का प्रभाव बताया गया है। जिस प्रकार मैल से युक्त पदार्थ शीशा, सोना, चाँदी आदि का मैल, पोंछकर या अग्नि में तपाकर दूर किया जाता है तब उसका वास्तविक रूप चमकता है उसी प्रकार सांसारिक प्रपञ्चों में जकड़े होने के कारण आत्म तत्व का ज्ञान जीव को नहीं होता जब साधक योग रूपी अग्नि में तपाकर शरीर, इन्द्रियों मन और बुद्धि से पृथक हो वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर लेता है तब सांसारिक शोक-मोह आदि से पृथक होकर दिव्य ज्योति का साक्षात्कार कर अपने मानव जीवन को सफल बना देता है।

"विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव" यह प्रार्थना सफल हो जाती है। और योग सिद्धि का फल प्राप्त कर लेता है।

यदाऽऽत्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत्।
अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वंविशुद्धं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।।१५।।

पदार्थः- यदा- जब युक्तः- योगी इह- यहाँ दीपोपमेन- दीपक के समान आत्मतत्त्वेन- आत्मतत्त्व के ज्ञान के द्वारा ब्रह्मतत्त्वम्- ब्रह्म को प्रपश्येत्- देख लेता है। तब उस अजम्- अजन्मा ध्रुवं- निश्चल सर्वतत्त्वैः- समस्त तत्त्वों से विशुद्धम्- पवित्र देवम्- परम देव को ज्ञात्वा-प्रत्यक्ष कर सर्वपाशैः- सभी बन्धनो से मुच्यते- मुक्त हो जाता है।

व्याख्याः- आत्मतत्व को जान कर ही परम तत्व ब्रह्म का साक्षात्कार हो सकता है। इन्द्रियां मन और बुद्धि के द्वारा उसको नही जाना जा सकता यही भाव इस मन्त्र में प्रकट किया गया है।

ब्रह्म तत्त्व जड़ चेतन तत्त्वो की अपेक्षा पवित्र हैं वह अज्ञान पापादि आवरणों से रहित है। जिस प्रकार दीपक के प्रकाश में सभी वस्तुयें जो कमरे में होती है। परन्तु अन्धेरे मे लिप्त रहने के कारण दिखाई नहीं देती प्रकाश होने पर दिखाई देती है। उसी प्रकार योगी अपने हृदय रूपी गुफा में आध्यात्मिक ज्ञान का प्रकाश जला कर ब्रह्मतत्व के दर्शन कर लेता है वह ब्रह्मतत्व अजन्मा, अविनाशी सदा एक रस निश्चल अन्य सब तत्वों से पवित्र है। ऐसे उस ज्ञान के भण्डार परम ब्रह्म का साक्षात्कार कर जीव जन्म- मरण के बन्धनो से छूट जाता है।

एष ह देव: प्रतिषोऽनु सर्वा: पूर्वो ह जात: स उ गर्भे अन्त: ।
स एव जात: स जनिष्यमाण: प्रत्यङ् जनांस्तिष्ठति सर्वतोमुख: । ।१६ । ।

पदार्थ:- ह- निश्चय से एष: देव:- उपरोक्त देव सर्वा: अनु- सब दिशाओं में व्याप्त है। वही पूर्व: जात:- सृष्टि रचना से पूर्व विद्यमान था स: एव गर्भे अन्त:- वही आत्मतत्व के गहरे गह्वर मे सदा विराजमान रहता है। जात: जनिष्यमाण:- वही वर्तमान् भविष्य और भूत काल में एक रस विराजमान है। जनान् प्रत्यङ्- सभी जीवों के अन्दर विद्यमान तिष्ठति- रहता है। सर्वतो मुख:-उसकी दिव्य भक्ति सब और छाई हुई है।

व्याख्या:- ब्रह्म की व्यापकता का वर्णन किया गया है। यह जिसका साक्षात्कार योगी जन करते हैं वह सभी पुर्वादि दशों दिशाओं में हिरण्यगर्भ रूप में सृष्टि रचना से पहले था वर्तमान और भविष्य में भी एक रस रहने वाला है। वही सब जीवों के अन्दर विद्यमान सदा बना रहता है। वह सर्वव्यापक होने से सब और से देख लेता है। जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है। यह मन्त्र यजुर्वेद के ३२वें अध्याय ४ का है। एषो ह देव: प्रदिशोऽनु सर्वा पूर्वा ह जात: । ।

यो देवों अग्नौ यो अप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश।
य औषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नम: । ।१७ । ।

पदार्थ:- य: देव:- जो देव परमात्मा अग्नौ,अप्सु- अग्नि और जल में विश्वम्- सम्पूर्ण भुवनम् सम्पूर्ण लोक लोकान्तरों में आविवेश-प्रविष्ट हो रहा है। य:- जो औषधिषु वनस्पतिषु-औषधियों और वनस्पतियों में विद्यमान है। तस्मै देवाय- उस सर्वव्यापक देव को नमो नम:- बार बार नमस्कार है।

व्याख्या:- वह दिव्य ज्योतिस्वरूप परमात्मा जो सब शक्तियों का केन्द्र है, अग्नि, के सभी सूर्य विधुत आदि तथा जलों में जलरूप सब स्नोतों, नदियों, समुद्रों और हिम विराजमान है। वह निश्चय ही सम्पूर्ण भुवन मण्डल में व्याप रहा है। वह हर प्रकार के फल-फूल, कन्दमूल ओषधियों और नाना प्रकार के वृक्षों में भी ओत प्रोत हो रहा है। ऐसा उस महादेव को हमारा बार बार नमस्कार है।

नम: शब्द दो बार आदर सूचक और अध्याय समाप्ति का सूचक है।

इति द्वितीय अध्याय समाप्त २

अथ तृतीय अध्याय

य एको जालवानीशत ईशनीभिः सर्वाल्लोकानीशत ईशनीभिः।
य एवैक ऊद्धवे सम्भवे च य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति।।१।।

पदार्थः- यः जो एकः-अकेला जालवान्- सृष्टि प्रपञ्च को रचने वाला ईशनीभिः- अपनी शक्तियों से ईशते- शासन करता है। ईशनीभिः- अपनी शक्तियों से सर्वान्-लोकान्-सब लोक लोकान्तरों को ईशते-अपने शासन में रखता है। यंः एक एव-जो अकेला ही उद्धवे सम्भवे च- सब जगत् का उत्पन्न और संहार करने वाला है। ये जो साधक एतद् विदुः- इस रहस्य को जान जाते है। वे अमृताः भवन्ति- अमर हो जाते है।

व्याख्याः- इस मन्त्र में जालवान् शब्द विशेष ध्यान देने योग्य है-जल-माया या सृष्टि रचना के दुस्तर कार्य को कहते हैं-इस रचना को करने वाला वह परमात्मा जालवान है। "तत् अस्य अस्ति" वह उसका है इस अर्थ में मतुप् प्रत्यय" तदस्यास्त्यस्मिन्निति- मतुप्" अस्तटाध्यायी सूत्र ५/२/९०। म को व ८/२/९ सूत्र से हुआ-इस जगत् की रचना तथा शासन किनके द्वारा करता है। उत्तर दिया ईशते ईशनीभिः"अपनी स्वाभाविक शक्तियों द्वारा शासन करता है किन पर शासन करता है उत्तर है सम्पूर्ण लोक लोकान्तरों पर नियन्त्रण करता है। किस समय करता है उत्तर हुआ- जब प्रपञ्च का मेल होता है और जगत् का प्रादुर्भाव हो जाता है। इस प्रकार के रहस्य को जो साधक जान लेते हैं वे अमर हो जाते हैं।

एको हि रूद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य इमॉल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यड् जनांस्तिस्ठति संचुकोचान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गो पाः।।२।।

पदार्थः- यः- जो एकः- अकेला रूद्रः- रूद्र न द्वितीयाय- जिसने दूसरे का सहारा नही लिया इमान् लोकान्-इस सब लोकों पर ईशते- शासन करता है। सः-वह" जनान् प्रत्यड़- सभी जीवों के अन्दर तिष्ठति- स्थित है विश्वा भुवनानि- सम्पूर्ण लोकों संसृज्य- रचना करके गोपाः- सब की रक्षा करने वाला अन्तकाले-प्रलय काल में संचुकोच- सब को समेट लेता है।

व्याख्याः- सर्वशक्तिमान्-सर्वव्यापक परमात्मा की शक्ति का वर्णन पुनः किया गया है।वह अकेला परमात्मा अत्याचारियों को दण्ड देने वाला रुद्र है। अपनी स्वाभाविक शक्तियों के द्वारा लोक लोकान्तरों पर शासन करता है। वह समस्त प्राणियों के भीतर स्थित है। वह जिन गुणों सत्व, रज, तम के संयोग से सृष्टि की रचना करता है प्रलय काल आने पर

उन को पुन: भिन्न कर देता है। अत: सृष्टि का उत्पन्न और विनाश करने वाला वही सर्वव्यापक-सर्वशक्ति सम्पन्न परमात्मा एक ही है। इस प्रकार सब ब्रह्म ज्ञानियों ने निश्चिय कर बताया है।

विश्वतश्चक्षुरूत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरूत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां द्यमति सं पतत्रैर्द्यावा भूमौ जनयन्देव एक:।।३।।

पदार्थ:- विश्वतश्चक्षु:- सर्वत्र नेत्रवाला उत- और विश्वतोमुख:- सब जगह मुख वाला। विश्वतोवाहु:- सवस्थल हाथवाला उत-और विश्वतस्पात्-सर्वत्र पैर वाला द्यावा भूमौ जनयन्- आकाश और पृथिवी का उत्पन्न करने वाला एक: देव:- अद्वितीय परमात्मा बाहुभ्याम्- जीवों को दो दो हाथों वाला संधमति- युक्त करता है पतत्रै:- पंख वाले कीट पतंगों को पंखों से सं-द्यमति- युक्त करता है।

व्याख्या:- वह परमात्मा केवल एक ही है परन्तु सम्पूर्ण लोकान्तरों को अपनी दिव्य शक्ति द्वारा देखता है। उससे कोई छिपा नहीं है। उसका मुख चारों और फैला हुआ है अर्थात् भक्त जन प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में उसके दर्शन कर सकते हैं। उसकी भुजायें चारो और फैली हैं। अर्थात् ज्ञानी जन कहीं भी उसकी अंगुली पकड़ सकते हैं उसका सहारा प्रत्येक स्थान में प्राप्त कर सकता है। उसकी ग्रहण करने और गमन करने की शक्ति सर्वत्र है। उसके पांव सर्वत्र हैं ऐसी कोई भी जगह नहीं जहाँ वह न जा सकता हो। वह अपनी शक्तियों से मनुष्य तथा अन्य जीव जन्तुओं को रचकर उनमें प्रत्येक प्रकार की शक्ति का संचार करता है।

यो देवानां प्रभवश्चोद्धवश्च विश्वाधिपो रूद्रो महर्षि:।
हिरणगर्भ जनयामास पूर्व स नो वुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ।।४।।

पदार्थ:- य:- जो रुद्र- रूद्र देवानाम्-इन्द्रियों का प्रभव:-उत्पत्ति च- और उद्धव:- वृद्धि करने वाला विश्वाद्यिय:- सबका पालन करने वाला महर्षि:- सर्वज्ञ है। पूर्व: सृष्टि के आदि मे हिरण्यगर्भम्- हिरण्य गर्म को जनयामास- उत्पन्न किया स:-वह न:-हमलोगों को शुभया बुद्धया- शुभ बुद्धि से संयुनक्तु- संयुक्त करें।

व्याख्या:- इस मन्त्र में परमात्मा के कई विशेषण दिये हैं। जो सब देवताओं अर्थात् इन्द्रियों का उत्पन्न करने वाला तथा सब प्रकार की विभूतियों का कारण है। सारे संसार का पालन करने वाला रुद्र पापियों और दुष्ट स्वभाव वालों को दण्ड देने वाला है। महर्षि- महांश्चासौ- ऋषि- सर्वज्ञ है। हिरणयगर्भम्- हितं- रमणीयम् अति- उज्जवल। ज्ञानं गर्भ:- अन्त: सार: यस्य तम्- सृष्टि रचना के आदि में जिसने हिरण्य-- चमकने वाले सोना आदि तथा तेजोमय पिण्ड नक्षत्र आदि को उत्पन्न किया वह परमदेव हमें शुद्ध ज्योतिषमति पवित्र बुद्धि प्रदान करे।

या ते रूद्र शिवा तनूरघोरापापकाशिनी।

तया नस्तनुवा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि।।५।।

पदार्थः- रूद्र! हे रूद्र देव ते-तेरी या- जो अघोरा- सौम्य अपापकाशिनी- पापों को दूर करने वाली शिवा- कल्याणकारी तनूः- स्वरूप है गिरिशन्त- सब के हृदय रूपी गुफा में विराजमान तथा-उस शन्तमया- शान्ति देने वाले तनुवा- दिव्य स्वरूप से अभिचाकशीहि- हमारे हृदयों को प्रकाशित कीजिये।

व्याख्याः- यह और आगे का दोनों मन्त्र यजुर्वेद १६ अध्याय २,३ के हैं इनमें विद्वानों वेदों के ज्ञाता तथा परमात्मा से भक्त प्रार्थना करता है। हे रूडा! दुष्टों को रूलाने वाले, सन्तों को सुख देने वाले। आपकी जो सौम्य कल्याण करने वाली तथा जिसके स्मरण करने से पापों बुराईयों का नाश हो जाता है ऐसी गिरिशन्त ! गिरै स्थित्वा शम् सुख अर्थात् जैसी शक्ति पर्वतों के अन्दर हैं या जो प्रत्येक के हृदय रूपी गुफा में स्थित शान्त-सच्चिदानन्द स्वरूप है उस नीति से सुख का विस्तार करने वाले प्रभु अभिचाक शीहि अभि-पश्य- हमारी ओर देखो अर्थात् हमें भी कल्याण कारी पथ पर चलाने की कृपा करे।

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते विभर्ष्यस्तवे।

शिवां गिरित्र तां कुरू मा हिंसीः पुरूषं जगत्।।६।।

पदार्थः- गिरिशन्त- हे गिरिशन्त याम्-जिस इषुम्- वाण को अस्तवे- फेंकने के लिये विभर्षि-धारण किये हो। हे गिरित्र- गिरिरक्षक ताम्- उस कारण को शिवाम्- कल्याण-करी कुरू-वनालो पुरूषम्- जीवयुक्त जगत्-संसार को मा हिंसीः- मतमार कष्ट न दे।

व्याख्याः- पुनः प्रार्थना की गई है हे सबके हृदयों में शान्ति प्रदान करने वाले, हमारा स्वभाव ऐसा बना दो जिससे हम आपके क्रूर वाणों के अधिकारी न बने। आपने जो वाण जीवों की और फैंकने के लिये हाथ में ले रखा है हे पर्वतों के रक्षक इस वाणा को हमारे लिये शिव रूप कल्याणकारी बना दो किसी भी प्राणी की हिंसा न करों प्रत्येक मनुष्य को यह विचार कर लेना चाहिये कि उस दयालु भगवान की आज्ञाओं का जो वेद द्वारा दिया गया है उसका उल्लंघन न करे ऐसा करने से उस प्रभु की कृपा दृष्टि हमारे ऊपर होगी और हम कल्याण मार्ग की और बढ़ते चले जायेंगे। इसी अभिप्राय से उपरोक्त दोनो यजुर्वेद के मन्त्रों से प्रार्थना की गई है। पौराणिक जन गिरिशन्त- का अर्थ शिव को मानकर मूर्ति रूप मान कर पूजा करना मानते हैं। जो वेद के विरूद्ध है।

ततः परं ब्रह्मपरं वृहन्तं यथानिकायं सर्वभूतेषु गूढम्।

विश्वस्यैकं परिवेष्टितारमीशं तं ज्ञात्वामृता भवन्ति।।७।।

पदार्थः- ततः- जीवजगत् से परम्- परे ब्रह्म परम्-हिरण्यमय ब्रह्म से भी श्रेष्ठ सर्वभूतेषु-सब

प्राणियों में यथानिकायम्- उनके अनुकूल गूढ़म्- अन्दर छिपे हुये विश्वस्य परिवेष्टितारमीशं- सम्पूर्ण संसार को चारों और से घेरे हुये तम्-उस वृहन्तम्-उस महान् एकम् ईशम्- एक मात्र परमात्मा को ज्ञात्वा- जानकर अमृता: भवन्ति- अमर हो जाते हैं।

व्याख्या:- यजुर्वेद अध्याय ३१ में जिसको पुरूष-सूक्त कहते है। उसी का भाव इस मन्त्र में दिया गया है। इसकी व्याख्या पहले पुस्तक रूप में की गई है। वह परमात्मा इस पञ्चभौतिक दृष्टिगत संसार से भी भिन्न है। देदीप्यमान हिरण्मय संसार से भी श्रेष्ठ है सब से व्यापक होने के कारण महान है। सर्व प्राणियों के हृदय रूप गुफा में स्थित है सब जीवों से पृथक होता हुआ भी इन में अपनी सत्ता से रमा हुआ परमात्मा है। वहीं से सब पर शासन करता है। ऐसे इस परमदेव परमात्मा को जो योगिजन ब्रह्मज्ञानी जानकर अमरता को प्राप्त कर लेते हैं। उन्हीं को मोक्ष प्राप्ति होती है।

वेदाहमेतं पुरूषं महान्तमादित्यवर्ण तमसः परस्तात्।
त मेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्थाः विद्यतेऽयनाय।।८।।

पदार्थ:- हे ज्ञानी जन: तमसः परस्तात्- अविधा- अन्धकार से परस्तात्-सर्वथा भिन्न। आदित्य वर्णम्-सूर्य के समान प्रकाश मान एतम्- इस महान्तम्-महान् पुरूषम्-परमात्मा को अहं-मैं वेद-जानता हूँ। तम्- विदित्वा- उसको जानकर ही मृत्युम्- अत्येति- मृत्यु को उलंघन कर सकता है अयनाय- परमपद प्राप्ति के लिये अन्य:- दूसरा पन्था:- मार्ग न विद्यते- नहीं है।

व्याख्या:- मन्त्र भी यजुर्वेद ३१ अध्याय का १८ है। इसमें ऋषि अपने अनुभव की बात कहकर ब्रह्म ज्ञान के फल की दृढ़ता प्रकट कर रहे हैं।

ऋषि कहता है कि मैं इस महान से महान पुरूष को जानता हूँ-पूर्ण और सब में व्यापक होने वाले सूर्य के समान अज्ञान-अन्धकार से रहित ब्रह्माण्ड रूपी पुरी में निवास करने दिव्य प्रकाश से युक्त परमात्मा को जानने का प्रयास करे कि उस प्रभु को ही जानकर इस भयानक संसार चक्र से छूट कर शान्ति पा सकता है अर्थात् जन्म्-मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो सकता है। उस दिव्य शान्ति और आनन्द स्वरूप मोक्ष की प्राप्ति का दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिद्यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिस्ठत्येकस्तेनेदं पूर्ण पुरूषेण सर्वम् ।।९।।

पदार्थ:- यस्मात् परम्- जिससे बडा अपरम्-दूसरा किंचित-कुछ भी न-अस्ति- नहीं है। यस्मात्- जिससे कश्चित-कोई न - न तो अणीय:- सूक्ष्म हैं न ज्याय:- न महान है। एक:- अकेला वृक्ष इव- वृक्ष की भाँति स्तब्ध:-निश्चल दिवि- आकाश में तिस्ठति-स्थित है। तेन पुरूषेण- पुरूष रूप से इदम्-यह सर्वम्-सम्पूर्ण जगत् पूर्णम्:-पूर्ण है।

व्याख्या:- जिस परम देव से श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है। वह सब सूक्ष्म वस्तुओं से भी सूक्षम है उससे न कोई सूक्षम है और न कोई महान है " अणोऽणीयान् महतो- महीयान्- वेद में कहा है। अद्वितीय परमात्मा अपनी दिव्यात्मा महिमा के कारण वृक्ष की भाँति और एक अकेला ही है। सभी जड़ चेतन और जगत के अन्दर और बाहर समाया हुआ है। तद्दूरे-तदन्तिके" वह अज्ञानियों के लिये दूर और ज्ञानियों के लिये अत्यन्त निकट है। वह अत्यन्त सूक्षम होते हुये है भी सब से महान भी है। वही सारे जगत को अपनी पूर्णता से पूर्ण किये हुये है।

ततो यदुत्तरं तरं तद रूपमनामयम् य।
एतद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःखमेवापिवन्ति।।१०।।

पदार्थ:- ततः-ऊपर बताये हिरण्यगर्भ से यत्- जो उत्तरतरम्-बहुत उत्तम है तत्-वह परमात्मा अरूपम्- रूपरहित और अनामयम्-सब प्रकार के दोषों से रहित है। ये- जो ज्ञानी जन एतत्-इस परमात्मा को विदुः-जानते हैं। ते-वे अमृता भवन्ति-अमृत हो जाते हैं। अथ इतरे- किन्तु दूसरे जो उसको नहीं जानते वे दुःखम् एव-बार बार के दुःख को ही अपियन्ति प्राप्त होते हैं।

व्याख्या:- जो जड़ चेतन से श्रेष्ठ है, वह निरूप है वह इन नेत्रों से दिखाई नहीं देता वह सब प्रकार के दोषों से दूर निराकार है। जो योगीजन इस रहस्य को भली भाँति जान लेते हैं। वे अमर हो जाते हैं। अर्थात् सब प्रकार के दुःखों से छूट जाते हैं।अतः सांसारिक मनुष्य यदि संसार के संकटों से बचना चाहता है तो उस परम देव को जानने का अभ्यास करे।

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात्सर्वगतः शिवः।।११।

पदार्थ:- सः भगवान्- वह भगवान् सर्वाननशिरोग्रीवः-सब मुखों वाला सब शिरों वाला सब ग्रीवों वाला हैं। सर्वभूतगुहाशयः- सभी प्राणियों के हृदय रूपी गुफाओं में निवास करने वाला है। सर्वव्यापी- सब जगह व्याप्त है। तस्मात्- इसलिये सः- वह शिवः- कल्याणस्वरूप सर्वगतः- सब जगह पहुँचा हुआ है।

व्याख्या:- सर्वव्यापक होने के कारण वह परमात्मा सबके मुखों सिरों और ग्रीवों में भी सब प्रकार की क्रियाओं का जो भी जीव जगत् करता है वह उसी की शक्ति से है। वह सभी प्राणियों के हृदय रूपी आकाश में व्याप्त है। वह परम ऐश्वर्य शाली और सर्वव्यापक भी है। इसी लिये सब का कल्याण करने वाला वह शिव है। भगवान् विशेषण से सब प्रकार के ऐश्वर्य से युक्त है विष्णु पुराण में भग का अर्थ किया गया है।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा।

समग्र ऐश्वर्य? धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इन सब को भग कहते हैं। इसी लिये वह सब ऐश्वर्यों से युक्त मंगल कारक शिव है।

महान्प्रभुर्वै पुरूष: सत्त्वस्यैष: प्रवर्त्तक: ।

सुनिर्मलामिमां प्राप्तिमीशानो ज्योतिरव्यय: ।।१२।।

पदार्थ:- वै-निश्चय ही एष: महान् प्रभु:- यह महान प्रभु ईशान:- सब पर नियन्त्रण करने वाला अव्यय:- सदा रहने वाला। ज्योति: पुरूष:- प्रकाश स्वरूप पुरूष इमां- इस सुनिर्मलाम्प्राप्तिम्- अपनी पवित्र प्राप्ति की और सत्त्वस्य प्रवर्त्तक:- अन्त: कारण को प्रेरित करने वाला है।

व्याख्या:- सकल ब्रह्माण्ड़ रूपी नगरी में रहने वाला वह परमात्मा महान अर्थात् जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय करने में समर्थ चेतन सत्ता है। वही मानव हृदय में सत्वों गुणों का प्रेरक है वह अखण्ड पवित्र दिव्य ज्योति है। अविद्या अज्ञान से रहित है वह सब पर शासन करने वाला अविनाशी मुक्त अवस्था में भी जीव जिसका सहारा लेकर उसके दिव्य आनन्द रस का पान करते रहते हैं।

अङग गुष्ठमात्र: पुरूषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्ठ: ।

हृदा मन्वीशो मनसाभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति।।१३।।

पदार्थ:- अंगुष्ठमात्र:- अंगुष्ठमात्र हृदय में निवास करने वाला अन्तरात्मा- अन्तर्यामी पुरूष:- परम पुरूष सदा जनानाम्- सदा ही मनुष्यों के हृदये -हृदय में संनिविष्ट-स्थित है। मन्वीश:- मन का स्वामी है। हृदा- मनसा- निर्मल हृदय और मन से अभिक्लृप्त- प्रत्यक्ष होता है। ये- जो ध्यानी जन एतत्- इस ब्रह्म को विदु- जान लेते हैं ते- वे अमृता:- अमर भवन्ति- हो जाते हैं।

व्याख्या:- अंगूठे के परिमाण हृदय के अन्दर स्थित आत्मा में रहने वाला अर्थात् जिसका ज्ञान आत्मा के अन्दर ही ध्यान लगाने से किया जा सकता है। वह सबके हृदयों में निवास करते हैं। जिसका प्रत्यक्ष शुद्ध-हृदय और पवित्र मन से किया जा सकता है। वही मन का नियन्त्रण करने वाला है। जो योगी जन उसको जान जाते हैं वे जन्म-मरण के दु:खों से छूट जाते हैं। मोक्ष के अमर पद को प्राप्त कर लेते हैं। भगवान सभी को प्रेरणा देता है किन्तु मूर्ख जन उसको नहीं समझते जिससे दु:ख पाते रहते हैं।

सहस्रशीर्षा पुरूष: सहस्राक्ष: सहस्रपात् ।

स भूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठदशांगुलम् ।।१४।।

पदार्थ:- पुरूष:-सर्वव्यापक परमात्मा सहस्रशीर्षा- असंख्य प्राणियों के सिर सहस्राक्ष: प्राणियों के नेत्र वाला सहस्रपात्- हजारों जीवों के पैर वाला है स:- वह भूमिम्-समस्त ब्रह्माण्ड को विश्वत:-चारों ओर से वृत्वा- घेरकर दशाङगुलम्- पांच स्थूल और पांच

सूक्ष्म भूतों से निर्मित जगत् को अति- पार करके अतिष्ठत- स्थित है।

व्याख्या:- यह मन्त्र यजुर्वेद ३१ अध्याय का पहला मन्त्र है इसको पुरूष सूक्त भी कहते हैं। यह सृष्टि विद्या का प्रकरण है। सारे ब्रह्माण्ड में व्यापक होने से उसकी मनन दर्शन और गमन शक्ति जो प्राणी मात्र में दिखायी देती है उसी के कारण है इसी लिये हजारों सिर, हजारो आँख, हजारो पैर वाला उस आत्माओं के अन्दर स्थित पुरूष को कहा है। वह इस सारे जगत को बाहर भीतर से घेरे हुये है जैसे आत्मा की सत्ता उस शरीर में हैं किन्तु आत्मा इस शरीर से भिन्न है उसी प्रकार दश अंगुल-पाञ्च ज्ञानेद्रियां प्राण, मन, बुद्धि, चित और अंहकार इन साधनो से मुक्त जीवात्मा और ब्रह्माण्ड में सर्वत्र सूक्ष्माति होने से समाया हुआ है। अति- अतिष्ठत। विशेष रूप से इस जगत् के प्रभाव से भिन्न है। अर्थात्- अपनी दस उपरोक्त पदार्थ रूपी अगुलियों से सबको अपने दोनों हाथों में पकड़े हुये हैं किन्तु उनसे भी पृथक उसकी सत्ता है-अत: उसके हाथ खाली ही हैं। स्थूल और सूक्ष्म जगत् से उसकी सत्ता भिन्न है। वह निर्लेप निरञ्जन है।

इस बात को अगले मन्त्र में स्पष्ट किया गया है।

पुरूष एवेदं सर्व यद् भूतं यच्च भाव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ।।१५।।

पदार्थ:- यत:-जो भूतम्- उत्पन्न हुआ यत्- जो भव्यम्- आगे उत्पन्न होने वाला च-और यत् जो भाव्यम्- आगे उत्पन्न होने वाला च-और यत्-जो अन्नेन-खाद्य पदार्थों से अतिरोहति- अत्यन्त बढता है। इदम् इस प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सर्वम्-सब जगत् को वही अमृतत्वस्य- अविनाशी मोक्ष सुख का ईशान:- स्वामी हैं पुरूष:- सब गुणों कर्म स्वभाव से परिपूर्ण एव-परमात्मा ही है।

व्याख्या:- यह मन्त्र भी यजुर्वेद ३१ वे अध्याय का दूसरा है। परमात्मा की सर्वव्यापकता का सुन्दर उदाहरण दिया हैं संसार जिस अवस्था में पूर्व काल में था, भविष्य में होगा तथा वर्तमान समय में दिखाई दे रहा है। यह सब उसी परमात्मा में निहित है। जीवात्मा के जो पिण्ड शरीर हैं जा अन्न खा कर बढ़ते हैं और मरण धर्म है उन सब में भी वही पुरूष समाया हुआ है अमृत अवस्था अर्थात् जब साधक साधना द्वारा मुक्त हो जाता है तब भी उसी के शासन में रहता हुआ आनन्दानुभव करता है।

सर्वत: पाणियादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वत: श्रुतिमन्नयोंके सर्वमावृत्य तिष्ठति ।।१६।।

पदार्थ:- तत्:-वह ब्रह्म सर्वत: पाणिपादम्- सर्वत्र हाथ-पैर वाला सर्वतोडक्षिशिरोमुखम्-

सब जगह आंख, सिर और मुख वाला सर्वत श्रुतिमान:- सब जगह कान वाला है। लोके- सारे ब्रह्माण्ड में वह सर्वम् आवृत्य-सब कुछ घेरकर तिष्ठति- स्थित है।

व्याख्या:-श्री योगीराज कृष्ण जी ने इसी मन्त्र द्वारा अर्जुन को उस परमात्मा की सर्वव्यापकता का वर्णन गीता में-१३-१८ में किया है।

उस परमात्मा की ग्रहण, गमन, दर्शन, मनन और वाक शक्तियां तथा सुनने की शक्ति सब जगह रहती है। सर्वव्यापक होने से कोई वस्तु या स्थान ऐसा नहीं जहाँ वह न हो अत: सर्वज्ञ होने के कारण वह सब कुछ जान लेता है। जड़ चेतन जगत को चारों ओर से वह घेरे हुये है- अर्थात् उसके उदर में सब समाया हुआ है। इससे मानव को समझ लेना चाहिये कि तेरी सब गतिविधियों को वह परमात्मा जान लेता है इसलिये ऐसा कर्म न कर जिससे तू दण्ड दु:ख प्राप्त करे। शुभ कर्म कर और प्रभु के आनन्द का अधिकारी बन।

सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत्।।१७।।

पदार्थ:- वह प्रभु-सर्वेन्द्रियविवर्जितम्- इन्द्रियों से रहित होते हुये भी सर्वेन्द्रियगुणाभासम्- सब इन्द्रियों के गुणों को प्रकट करने वाला है। सर्वस्य प्रभुम्- समस्त ब्रह्माण्ड का स्वामी सर्वस्य ईशानम्- सब पर शासन करने वाला बृहत् शरणम्- सबसे बडा आश्रय देने वाला है।

व्याख्या:- वह परमात्मा निराकार इन्द्रियों से रहित होते हुये भी इन्द्रियों में जो शक्ति सुनने, देखने, सूंघने, छूने, बोलने, मनन करने, चिन्तन तथा विवेचन करने कीं भिन्न भिन्न शक्तियाँ होती है वे सब उसी परमात्मा की शक्ति से हैं। इसी लिये सर्वशक्तिमान कहा जाता है। वही सबका स्वामी और नियन्ता है। जीव का सबसे बडा आश्रय वही है। इस लिय सब को उसी सर्वाधार की शरण में जाने का प्रयास करना चाहिये। सर्वन्द्रियगुणाभासम्-यह पहली पंक्ति गी. १३-१४ है। वृ. उ. ४/३/९ में लिखा है ध्यायतीव लेलायतीव" ध्यान करता हुआ सा तथा प्यार करता हुआ सा प्रतीत होता है।

नवद्वारे पूरे देही हं-सो लेलायते बहि:।
वशी सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च।।१८।।

पदार्थ:- सर्वस्य- सब स्थावरस्य चरस्य च- जड़ और चेतन लोकस्य- जगत् का वशी- अपने वश में करने वाला हंस- प्रकाशक है नव द्वारे- नौ द्वार वाले पूरे - शरीर में देही- हृदय के अन्दर स्थित देह का स्वामी है। वहि:- बाहर जगत में लेलायते- अपना शासन करता रहता है। सारे जगत् की गति उसी के सहारे चल

रही है।

व्याख्या:- वह परमपिता परमात्मा सारे ब्रह्माण्ड के जड़ अचेतन तथा चेतन जगत में सब प्राणियों को अपने आधीन रखने वाला है। वह सब का स्वामी है। जीवात्मा तो इस नौ द्वार वाले दो आंख, दो नाक दो कान और एक मुख जो सिर में स्थित है। तथा दो अधोभाग में मल-मूत्र त्यागने वाला दरवाजे हैं। इनमें निवास करने वाला शरीर का स्वामी हैं किन्तु वह परमात्मा तो इन सब प्राणियों के अन्दर स्थित आत्माओं के अन्दर भी छिपा हुआ हैं वह इस का हंस-है-हन्ति- अविद्यात्मकं कार्यामति हंस जो अविद्या जनित कार्यों का हनन कर देता हैं- जो उसकी शरण में जाता हैं। उसकी सब अविधा जनित पाप नष्ट हो जाते है। वही सारे आन्तरिक और बाह्य संसार के कार्यों का संचालन करता है। अत: कहीं भी उसका ध्यान किया जा सकता है।

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स श्रृणोत्यकर्ण।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुर हुंरग्रयं पुरूषं महान्तम्।।१९।।

पदार्थ:- स:- वह परमात्मा अपाणीपाद:- बिना हाथें पैर वाला ग्रहीत- ग्रहण करने वाला जवन:- वेग पूर्वक सर्वत्र गति करने वाला, अचक्षु:- नेत्रहीन भी पश्यति' सब देखता है। अकर्ण:- कान के न होने पर भी श्रृणोति- सब सुनता है। स: वह सर्वज्ञ वेद्यम्- जो भी जानने योग्य वस्तु है वेत्ति- उन सबको जानता है। तस्य वेत्ता- उस परमात्मा को जानने वाला न:- कोई नहीं है। तं महान्तम्-उस महान् अग्यं- आदि पुरूषम् पुरूष आहु:- कहते हैं।

व्याख्या:- परमात्मा सारे संसार का अग्रणी नेता और नियन्ता है। वह शरीर हीन भी बिना हाथों से सब ग्रहण कर लेता है। बिना पैरों के होते हुये भी सब जगह गमन करता है। नेत्र न होने पर भी सब देखता है। कान न होने पर भी सब सुन लेता है। समस्त जानने योग्य वस्तुओं को जान लेता हैं। आश्चर्य तो यह है कि उसको जानने वाला कोई बेरला ही होता है। जो सबको जानने वाला है उसको बिना योग साधना के कौन जान सकता है। ज्ञानी महायोगी उसके बारे में कहते हैं कि सबसे आदि, पुरातन और महापुरूष है।

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः।
तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम्।।२०।।

पदार्थ:- वह अणो: अणीयान्- सूक्ष्म से भी सूक्ष्म तथा महत: महीयान्- बडे से भी बहुत बड़ा आत्मा- परमात्मा अस्य जन्तो:- इस प्राणी के गुहायाम्- हृदय रूपी गुफा में निहित: छिपा हुआ हैं धातु: प्रसादात् सबकी रचना करने परमात्मा की कृपा से। तं- अक्रतुम्-

उस निष्काम ईशम् ईश्वर को महिमानम्- उस महिमा वाले को पश्यति- देख लेता है। वीतशोक:- और सब प्रकार के दु:खों से मुक्त हो जाता है।

व्याख्या:- वह परमात्मा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और महान से भी महान हैं वह प्रत्येक प्राणी के अन्दर छिपा हुआ है। यह जीवात्मा सांसारिक कष्टों से छुटकारा पाकर योग साधना से निर्मल ज्योतिष्मती बुद्धि प्राप्त कर उस निष्काम महामहिमा-वाले प्रभु के दर्शन उसी की कृपा दृष्टि पाकर कर सकता है। जब साधना करते करते योगी तेजोऽसि तेजो मयि देहि" तत्वत् तेज पवित्र हो जाता है। तभी उसकी कृपा होती है जिससे उसका साक्षात्कार भक्त को हो जाता है।

वेदाहमेतमजरं पुराणं सर्वात्मानं सर्वगतं विभुत्वात्।
जन्मनिरोधं प्रवदन्ति यस्य ब्रह्मवादिनो हि प्रवदन्ति नित्यम्।।२१।।

पदार्थ:- ब्रह्मवादिन:- वेद के रहस्य को जानने वाले यस्य- जिसके जन्मनिरोधम्- जन्म का अभाव प्रदन्ति- कहते हैं। हि- निश्चय ही जिसको नित्यम्- नित्य रहने वाला प्रवदन्ति-कहते हैं। एतम्- इस विभुत्वात्- व्यापक होने के कारण सर्वगतम्- सर्वत्र विद्यमान सर्वात्मानम्- सब की आत्माओं में नियामक बन रहने वाले अजरम्- जरा आदि विकारो से रहित पुराणम्- पुराण पुरूष को अहम्- मैं वेद-जानता हूँ।

व्याख्या:- आत्मस्वरूप का ज्ञान हो जाने पर प्रह्मवेत्ता ऋषि कहता है। वेद ज्ञान के तत्वो को जानने वाले ज्ञानी जन उस परमात्मा को अजन्मा और नित्य कहते हैं। व्यापक होने के कारण जो सब स्थानों में विद्यमान रहता है कोई भी ऐसा स्थान नहीं जहाँ वह न हो। वह सदा एक रस रहने वाला सनातन है। वह सब को गति देने वाला है- ऐसे उस ब्रह्म को मैने निश्चय जान लिया है।

इति तृतीय अध्याय

अथ चतुर्थोऽध्याय:

य एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगात् वर्णाननेकान् निहितार्थो दधाति।
वि चैति चान्ते विश्वमादौ स देव: स नो बुद्धया शुभया संयुनक्तु।।१।।

पदार्थ:- य:- जो अवर्ण:- रूप रंग से रहित निहितार्थ:- गुप्त- प्रयोजन वाला बहुधा शक्तियोगात्- अनेक शक्तियों के कारण आदौ- सृष्टि के आदि में अनेकान् वर्णान्- अनेक रूप रंग वाले पदार्थों को दधाति- धारण करता- रचता है। च- और अन्ते- अन्त में विश्वम्- सारे रचे जगत् को व्येति- वि+एति- अपने में विलीन कर लेता हैं, या जिसमे लीन हो जाता है। स: देव: एक:- वह देव एक ही है। स:-वह न:- हम लोगों को शुभया बुद्धया- शुभ बुद्धि से संयुनक्तु-युक्त करे।

व्याख्या:- इस अध्याय के प्रारम्भ में प्रभु से बुद्धि की प्रार्थना की गयी है। निराकार होने के कारण जिसका कोई रूप रंग नही हैं वह परमात्मा एक अद्वितीय है उसकी समानता का कोई नहीं हैं वह जगत् रचना के आदि में नि:स्वार्थ भाव से अपनी अनन्त शक्तियों के द्वारा जीवों को उनके कर्मों के फल भोग के लिये तथा आनन्द प्राप्त करने के लिए जगत को नाना प्रकार के रूप रंगो वाली रचता है। उसका पालन करता है और अन्त में प्रलय काल आने पर उसके मूल कारण प्रकृति सत्व, रज, तमो गुणों में परिवर्तन कर देता है। वह दिव्य स्वरूप परमात्मा हम उपासकों को कल्याणकारिणी मेधा बुद्धि से युक्त करें।

परमात्मा की सर्वव्यापकता का वर्णन तीन मन्त्रों में किया गया है।

त देवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमा:।
त देव शुक्रं तद् ब्रह्म तदापस्तत्प्रजापति:।।२।।

पदार्थ:- तद् एव- वही अग्नि वही आदित्य, वायु चन्द्रमा, प्रकाश नक्षत्रादि, जल, ब्रह्म तथा प्रजापति है।

व्याख्या:- परमात्मा को अग्नि ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र में, अग्निमीडे, कहा है। वह परमात्मा जगत् का नेता और नियामक है। वह आदित्य दिव्य प्रकाश स्वरूप अम्धकार अज्ञान को दूर करने वाला है। वह वायु है, संसार को गति देने वाला, दुष्टों को नष्ट करने वाला वह चन्द्रमा है। जैसे सब को प्रसन्न करने वाला चन्द्र होता है इसी प्रकार जो उसके समीप पहुंचता है उसके हृदय में उत्साह तथा आनन्द की उमंग उत्पन्न कर देने वाला है। वह शुक्र है अर्थात् पवित्र तेजोमय "तेजोऽसि तेजो मयिधेहि" ज्योति वला है। वह ब्रह्म सबसे बड़ा ज्ञान का आगार है। वह आप:-सर्वत्र व्याप्त तथा सर्वत्र प्राप्त होने वाला है। वह प्रजापति सब का पालन करने वाला स्वामी है।

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।

त्वं जीर्णो दण्डेन, वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः।।३।।

पदार्थ :– शरीरस्थ आत्मा का वर्णन ऋषि करते हैं। अर्थ साधारण सा है।

व्याख्या :– हे जीवात्मन्! तू इस भौतिक शरीर में प्रविष्ठ हो कर अनेक प्रकार के नामों वाला हो जाता है। वह जीवात्मा है। अनाम नाम तो अपने व्यवहार में प्रयोग करने के लिये दिया गया है। जीवात्मा का स्वभाव रूप रंग से भिन्न शुद्ध चेतन अजर, अमर और अविनाशी है, इतने गुण परमात्मा और जीवात्मा के समान है। जीवात्मा अनेकधा, परमात्मा एकधा एव। अतः अनेक रूप आत्मा के हो सकते है। वह लिंग और अवस्था से भिन्न है। शरीर में प्रविष्ट हो कर ही वह स्त्री, पुरुष, कुमार, कुमारी आदि नामों से पुकारा जाता है। तू ही वृद्ध अवस्था में दण्डा लेकर चलता है। जीवों को भ्रम में डालकर ठग लेता है। ठगने का भाव है वृद्धावस्था आने पर प्राणी जीवित तो रहना चाहता है इसीलिये अनेक प्रकार के उपाय किये जाते हैं, किन्तु उसके भोग जब पूरे हो जाते हैं तो वह सब कुछ छोड़-छाड़ कर चला जाता है।

नीलः पतंगों हरितो लोहिताक्षऽगिर्भ ऋतवः समुद्राः।

अनादिमत्वं विभुत्वेन वर्तसे यतो जातानि भुवनानि विश्वा।।४।।

पदार्थ :– नीलः पतंग – नील रंग का पतंग है। हरितः लोहिताक्ष – हरे और लाल नेत्र वाला है। तडिगर्भः – मेघ, ऋतवः – वसन्तादि ऋतुऐं। समुद्राः – धरती के सब समुद्र। यतः – क्योंकि। विश्वा भुवनानि – सभी लोक। जातानि – उत्पन्न हुये है। अनादिमत् – अनादि प्रकृति वाला। विभुत्वेन – सर्वव्यापक भाव से। वर्तसे – सब में विद्यमान है।

व्याख्या :– इस मंत्र में संसार का उपादान कारण प्रकृति का वर्णन किया गया है। कुछ इन मंत्रों को परमात्मा के रूप में भी मानते है। वस्तुतः है यह मूल प्रकृति के विषय में जिससे स्थूल जगत् की रचना होती है। वेदों में तीन ही अनादि हैं- ईश्वर, जीव, और प्रकृति। ईश्वर नियामक है।, जीव भोक्ता है प्रकृति भोग्य है। प्रकृति सत्व, रज और तमोगुण वाली अनादि है। इसको विभूषि भी कहा गया है क्योंकि प्रलयावस्था में शून्याकाश में समाई रहती है। इसमें अनेक प्रकार के परमाणु है। जिनके मेंल से आदि सृष्टि में अनेक लोक-लोकान्तर, नक्षत्र, ग्रह-उपग्रहों की रचना होती है। जगत् रचना के समय नीले, हरे, लाल वर्णों की हो जाती है। इसी के अन्दर मेघ, विद्युत् धारण करने वाले अन्तरिक्ष का निर्माण होता है। इसी से वसन्त, ग्रीष्म आदि ऋतुओं का प्रादुर्भाव होता है। इसी से अपार समुद्रों की रचना होती है। ये सब प्रकृति के नाना रूप है।

अजामेकां लोहित शुक्लकृष्णां वह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।

अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः।।५।।

पदार्थ :-सरूपा: - समान रूप वाली। वह्वी: - बहुत सी। प्रजा: - भूत समूह को सृजमानाम् - रचने वाली। लोहितशुक्लकृष्णाम् - त्रिगुणमयी लाल, श्वेत और काली। एकाम् - एक। अजाम् - अजन्मा प्रकृति को। हि - निश्चय से एक: अज: - एक अज जुषमाण: - आसक्त हुआ अनुशेते - भेगता है। अन्य: - दूसरा अज:- ज्ञानी एनाम्- इस प्रकृति को भुक्त भोगाम् - भोगी हुई को जहाति - छोड़ देता है।

व्याख्या :- इस मंत्र में अजा और अज को प्रकृति और आत्मा के रूप में प्रस्तुत किया गया है। मूल प्रकृति सत्व, रज और तमोमय है। इन तीनों के संयोग से सृष्टि बनी है। तीनों को गुण रूप में इनका रंग भी तीन प्रकार का कहा गया है। सतोगुण प्रकाशक और निर्मल होने से इसको श्वेत वर्ण क्योंकि शुद्ध पवित्र होने से आनन्द की प्राप्ति जीव कर सकता है। रजोगुण रागात्मक होने के कारण इसको लाल रंग का कहा गया है। रजोगुण से प्रकृति की ओर जीवात्मा का राग बढ़ जाता है। जिससे विभिन्न प्रकार की उत्पत्ति होने लगती है। तमोगुण का रंग काला माना गया है क्योंकि तमोगुण की अधिकता से जीवात्मा की बुद्धि अज्ञान, अन्धकार से ढक जाती है।

इसलिये इसका वर्ण काला माना गया है। इसी हेतु प्रकृति को अजा, अनेक रंग वाली बकरी कहा है। अज - यह पुल्लिंग का रूप है जिसका जन्म नहीं होता मूल प्रकृति का भी जन्म नहीं होता। उनके संयोग से जड़ स्वरूप स्थूल जगत् नाना रूपों में प्रकट होता है। जब जड़ और चेतन अज जीवात्मा का संयोग होता है तब चेतन जीव अपना काम प्रारम्भ कर देता है। अज- जीवात्मा के दो रूप प्रकट किये गये है। प्रकृति तो भोग्य है और जीवात्मा भोक्ता है। एक तो जीव अपने पूर्व जन्मों के कर्मों के आधार पर भोंगों में लिप्त हो जाता है और जन्म-मरण के चक्कर में भरमता रहता है। एक जीवात्मा ऐसा है जो प्रकृति के भोगों को भोगता तो है परन्तु योग साधनों से अपने तमो और रजो गुणों के अज्ञान मोह जनित आवरण को हटाकर सत्वोगुणी वन मुक्त अवस्था को प्राप्त हो जाता है। सांख्य शास्त्र में इसी अजा और अज को आलंकारिक रूप से समझाया गया है। अजा और अज के मेल से नाना रूप रंग वाली जड़-चेतन सृष्टि उत्पन्न होती है। अज जो ब्रह्म स्वरूप तीसरा सनातन, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव आप्त काम है। वह इस प्रकृति में लिप्त नहीं होता है। वह तो एक द्रष्टा है। इसी बात को अगले मन्त्र में स्पष्ट किया है। गीता में इसी जड़ और चेतन प्रकृति को "अपरेयमित:" ९-५ में परा-अपना नाम दिया है। १३-१ में क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ और १५-१६ में क्षर-अक्षर: से वर्णन किया है।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्व जाते।
तयोरन्य: पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्यो अभिचाकशीति ।।६।।

पदार्थ:- यह मंत्र ऋग्वेद १।१६४।२० का है सयुजा - सदा एक साथ रहने वाले, सखाया

- मित्र भाव से रहने वाले, द्वा - दो, सुपर्णा - सुन्दर पंखों वाले, समानम् - एक ही, वृक्षम् परिषस्वजाते - वृक्ष का आश्रय लेकर रहते हैं। तयो: - उन दोनों में, अन्य: - एक जीवात्मा, पिप्पलम् - वृक्ष के फलों को, स्वादु अत्ति- स्वाद लेकर खाता है। अन्य: - दूसरा, परमात्मा अनश्नन् - उनका भोग न करता हुआ, अभिचाकशीति - केवल देखता रहता है।

व्याख्या :- इस मंत्र में वैदिक त्रैतवाद की पुष्टि होती है। ये तीन अनादि हैं प्रकृति, जीव और परमात्मा। यही बात कठोपनिषद् में छाया और धूप मुण्डक ३-१ में तो यही मंत्र है गीता में अश्वत्थ वृक्ष संसार को कहा गया है। जीवात्मा अनेक हैं जो भिन्न भिन्न शरीरों के अन्दर अपने पूर्व जन्म में किये गये कर्मों के अनुसार भोग भोगता है। परन्तु परमात्मा सर्वव्यापक और एक ही है अत: प्रत्येक जीवात्मा से उसका निरन्तर सम्बन्ध है। इसी बात को इस मंत्र में स्पष्ट किया गया है। यह जगत् जो निरन्तर परिवर्तन शील है,इसमें दो चेतनतत्व अविनाशी, अनादि और अपरिवर्तनीय हैं। एक जीव यह जाति-वाचक प्रयोग है क्योंकि भिन्न भिन्न प्रकार के शरीरों में रहता है दूसरा अद्वितीय, अखण्ड सर्वव्यापक ब्रह्म। ये दोनों धूप-छाया की भांति मिले हुए है। अपने अपने स्वरूप के अनुकूल गुंण वाले है। ये दोनों इस परिवर्तनशील प्रकृति रूपी शरीर वृक्ष पर साथ-साथ मित्र भाव से रहते हैं। इनमें से एक जीवात्मा आसक्ति के कारण अपने कर्म फलों को इस वृक्ष के फलों को खाता है। भोग भोगता है और दूसरा सर्वव्यापक परमात्मा स्वभाव से आप्त काम होकर केवल देख रहा है। जब साधना द्वारा योगी भी अपने को भौतिक जगत् से पृथक कर देता है तब अपने मित्र आनन्द स्वरूप परमात्मा के आनन्द रस में लीन हो जाता है। यही मुक्ति है।

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः।।७।।

पदार्थ :- समाने वृक्षे - समान वृक्ष पर रहने वाला, पुरुष: - जीवात्मा, निमग्न: आसक्ति में डूबा हुआ, अनीशया - असमर्थ होने से, मुह्यमान: - मोहित हुआ, शोचति शोक करता है, यदा - जब, जुष्टम् - नित्य सेवित, अन्यम् - दूसरे, ईशम - ईश को अस्य - उसकी, महिमानम् - महिमा को, पश्यति - देखता है, इति - तब, वीत शोक: - शोक रहित हो जाता है।

व्याख्या :- इस मंत्र में जीवात्मा दु:खी कब होता है तथा सुखी कब होता है यह बड़ी सरलता से समझाया गया है। वृक्ष का अधिष्ठाता जीवात्मा नाना प्रकार के भोगों को भोगने में रत् है जिसके कारण उसको शरीर का मोह है। मै ऐसा हूँ, मै सबसे सम्पन्न, सुन्दर, उच्च कुलाभिमानी, सब कुछ मैं हूँ इन्हीं भोगों में फंसा हुआ अज्ञानी बार-बार

जन्म लेता मरता और झंझटों में उलझता दु:खी हो जाता है। तब अपने को असमर्थ पाता है और देखता है उसके सामने उसकी प्रिय से प्रिय वस्तु नष्ट हो रही है और वह उसको बचा नहीं सकता है तब शोक और सन्ताप में डूब जाता है। जब वह अपने पूर्व पुण्यों के फल स्वरूप अपने पास अपने से भिन्न शक्ति जो सांसारिक तापों से रहित है, सर्वज्ञ है, आनन्द स्वरूप है, उसका साथ करता है। अर्थात् उस वृक्ष पर बैठे दूसरे परमात्मा का सानिध्य करता है। तब उसका अज्ञान जनित मोह समाप्त हो जाता है। मुक्त हों जाता है। अंग्रेज़ी में एक पंक्ति पढ़ने को मिली एक डॉक्टर जब कभी बीमार होता तो अपनी दवा खाता और स्वस्थ हो जाता उसको यह अभिमान हो गया था कि सब कुछ मैं ही हूँ। परमात्मा ईश्वर आदि कोई शक्ति नहीं इस लिये उसने अपनी नास्तिकता प्रकट करने के लिये मोटे-मोटे अक्षरों मे लिखवा दिया "God is no where." एक समय ज़ब उसकी दवा का कोई प्रभाव न हुआ तब उसको आभास हुआ कि मुझसे बड़ी कोई शक्ति है - बस उसने उस पंक्ति में W को No के साथ मिला दिया और " God is now here " कर दिया। जब अहंकार नष्ट हो जाता है तब आस्तिक भाव उत्पन्न होते हैं।

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तं न वेद किं ऋचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते।।८।।

पदार्थ :- यस्मिन् विश्वे देवा: - जिससे सभी देवता, अधि - अच्छी प्रकार, निषेदु: - स्थित है, अक्षरे-उसी अविनाशी, परमे व्योमन् - परमधाम में, ऋच: - सब वेद स्थित हैं, य: - जो व्यक्ति, तं न वेद - उस परम ब्रह्म को नहीं जानता वह, ऋचा - वेद की ऋचाओं से किम् - क्या करिष्यति - करेगा, इत् - परन्तु, ये - जो, तत् - उसको, विदु: - जानते हैं, ते - वे, इमे - ये, समासते - अच्छी प्रकार उसी में स्थित हैं।

व्याख्या :- आकाश की भांति सर्वव्यापक उस परमात्मा में सम्पूर्ण लोक-लोकान्तर समाये हुये है। जितनी भी दिव्य शक्तियाँ हैं उसी के आधार पर टिकी हुई हैं, मानव कल्याण के लिये जिस ज्ञान वेद की आवश्यकता है वह ज्ञान भी उसी अखण्ड,अविनाशी परमात्मा में निहित है। इसी कारण वेद को ईश्वरीय ज्ञान कहते है। मनुष्य ही इस ज्ञान से अपना कल्याण कर सकता है। वह भी जिसकी पवित्र बुद्धि होगी वही लाभ उठा सकता है। जो मनुष्य श्रद्धा-भक्ति से योग साधना से उस परम मित्र परमात्मा को जानने का प्रयत्न नहीं करता। केवल ऋचाओं का पाठ मात्र करता है वह इस भौतिक प्रपन्चों से पार नहीं हो सकता। जिन साधकों ने पूर्ण मनोयोग से वेद ज्ञान करते हुए उस परमधाम को पा लिया, वास्तव में वे ही मुक्ति के अधिकारी बन जाते हैं।

छन्दांसि यज्ञा: कृतवो व्रतानि भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति।
अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत्तस्मिंश्चान्यो मायया संनिरूद्ध:।।९।।

पदार्थ :–छन्दांसि - छन्द, यज्ञा: - यज्ञ, कृतव: - बड़े-बड़े ज्योतिषी आदि, व्रतानि - नाना प्रकार के व्रत, च - और, यत् - जो कुछ, भूतं भव्यं - भूतकाल-भविष्य तथा वर्तमान रूप, वेदा: वदन्ति - वेद कहते हैं। एतत् विश्वम् - इस सारे संसार को, मायी - प्रकृति का स्वामी परमात्मा अस्मात् - पूर्व महाभूत आदि तत्वों से, सृजते - रचता है, च - और, अन्य: - जीवात्मा, तस्मिन् - उसमे, मायया - माया मोह के द्वारा, संनिरूद्ध - बन्धा हुआ है।

व्याख्या :– यह सम्पूर्ण संसार प्रकृति के स्वामी परमात्मा ने माया अर्थात् मूल प्रकृति से रचा है। उसीने ऋक्, यजु, साम आदि छन्दों को प्रकट किया, उसी ने विभिन्न प्रकार के यज्ञों अर्थात् जितने भी परोपकार आदि श्रेष्ट कर्म है, इनका विधान किया है । उसी ने क्रतु अर्थात् ज्योतिष्टोमादि राष्ट्रहित तथा गोमेघ भूमि से प्राप्त होने वाले अन्न, फल, वनस्पति तथा गौ वंश की उन्नति की और रक्षा सम्बन्धित कार्यों का विधान करने वाला काल भेद भूत, भविष्य वर्तमान का विभाजन करने वाला, व्रतों का विधान करने वाला, जो कुछ भी वेद कहते हैं, ये सब कुछ उसी परमात्मा की रचना है। वह सर्वत्र व्यापक रूप में सबमें रमा हुआ है। इस वृक्ष पर बैठा दूसरा जीवात्मा इस प्रकृति के मोह में बन्ध ा जाता है। इसी से अपने साथ रहने वाले उस परम पिता को नहीं देख पाता जिससे नाना प्रकार के संकटों से घिरा रहता है। इस मानव शरीर को पाकर उस दयालु प्रभु का निरन्तर ध्यान करना चाहिये।

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तुं महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वभिदं जगत् ।।१०।।

पदार्थ :–मायां प्रकृतिम् - माया रूपी प्रकृति को, विद्यात् - **जानना चाहिये**, तु - और, मायाविनं महेश्वरम् - माया के स्वामी परमात्मा को **भी समझना चाहिये**, तस्य तु - उसी के तो, अवयव भूतै: - कारण कार्य रूप से, इदम् - **यह, सर्व जगत्** - सम्पूर्ण जगत व्याप्त है।

व्याख्या :– इस मंत्र में प्रकृति और पुरूष की पृथकता को समझाया गया है। माया रूपिणी सृष्टि की रचना होती है और इस मायापति महेश्वर परमपिता परमेश्वर को भी पृथक-पृथक समझना चाहिये। उस प्रमात्मा की शक्ति रूप यह मायावी सृष्टि दिखाई दे रही है। अज्ञानता के कारण मानव इस प्रकृति के जाल में फंस कर जन्म-मरण के जाल में फंसता रहता है और नाना प्रकार के दु:खों को भोगता है।

यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको यस्मिन्निदं स च वि चैति सर्वम्।
तमीशानं वरदं देवमीड्यं निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति।।११।।

पदार्थ :–य:एक: - जो अकेला ही, योनिम्-योनिम् - अधितिष्ठति - प्रत्येक योनि में

विराजमान है, यस्मिन् - जिसमें, इदम् सर्वम् - यह सम्पूर्ण विश्व, समेति - प्रलय के समय समा जाता है, च - और वि़ऐति च - विभिन्न रूपों में प्रकट हो जाता है, तम् - ईशानम् - उस, सर्वनियन्ता वरदम् - वर देने वाले, ईड्यम् - स्तुति के योग्य, देवम् - परमेश्वर को निचाय्य - अच्छी प्रकार जानकर साधक, अत्यन्तम् - सदा रहने वाली, इमाम् - इस शान्तिम् - परमशान्ति दायक को एति - पा लेता है।

व्याख्या :- सर्व व्यापक होने से जो प्रत्येक योनि में एक मात्र नियन्त्रण करने वाला है - अर्थात् सब को गति देने वाला एक मात्र वही परमात्मा है। प्रलय काल में यह सारा दृश्य मान संसार उसी में लीन हो जाता है। और जब सृष्टि की पुन: रचना होती है तो अनेक प्रकार के रूप प्रकट हो जाते है। वही सबका नियामक, वर देने वाला एक मात्र स्तुति के योग्य है उस परम देव को योगाभ्यास द्वारा अच्छी प्रकार जान कर साधक जीव परम् शान्ति को अर्थात् मुक्ति के आनन्द को प्राप्त कर लेता है। यही मानव जीवन का परम लक्ष्य है। गीता में योगी राज श्री कृष्ण जी ने ९,३१ में **शश्वच्छान्तिं निगच्छति तथा तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत। तत्प्रसादात्परां शान्ति, स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्। ।१८-६२। ।**

यो देवानां प्रभवश्चोद्धवश्च विश्वाधिपो रूद्रो महर्षि:।
हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं स नो बुद्धया शुभया संयुनक्तु। ।१२। ।

पदार्थ :- य: - जो, देवानां प्रभव: - सब देवताओं को उत्पन्न करने वाला च उद्धव:- और बढ़ाने वाला और, विश्वाधिप: - जगत् का स्वामी, महर्षि: - सर्वज्ञ है, जायमान - उत्पन्न हुए, हिरण्यगर्भम् - हिरण्यगर्भ को, पश्यत् - देखा, स: - वह परमात्मा, न: - हम को, शुभया - शुभ बुद्धया - बुद्धि से, संयुनक्तु - युक्त करे, वह रूद्र: - सब को अपने आधीन रखने वाला है।

व्याख्या:-यह अध्याय ३ में चौथा मन्त्र है। इसमें गायत्री मन्त्र का ही भाव है जो बुद्धि को शुभ मार्ग पर चलाने की प्रार्थना परमात्मा से की गई है। जो परमात्मा सर्वज्ञ है अत्याचारियों को दण्ड देने वाला है सारे विश्व का एकमात्र स्वामी है। सभी लोक लोकान्तरों तथा देवों विद्वानों तथा इस शरीर के अन्दर विद्यमान दिव्य शक्तियों मन बुद्धि तथा इन्द्रियों को शक्ति देने वाला तथा प्रलय काल में उनको हरण करने वाला है। जो परम देव अपने सर्वज्ञ ज्ञान से आदि में नाना प्रकार के हिरण्य चमकने वाले सूर्य चन्द्र नक्षत्र आदि तेजो पुन्जों की रचना करता है इस अत्यन्त दयापात्र वह परमदेव हमें शुद्ध मेघा बुद्धि से संयुक्त करे यही हमारी विनती है।

यो देवानामीघयो यस्मिल्लोका अधिश्रिता ।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पद कस्मै देवाय हविषा विधेभ। ।१३। ।

पदार्थः- य जो देवानाम अधिप सभी देवताओं का अधिपति है यस्मिन जिसमें लोकाः सव लोक लोकान्तर अधिश्रिताः- आश्रित हैं। य-जो अस्य इस द्विपदः- दो पैर वाले चतुष्पदः-चार पैर वाले जीवों पर ईशे-शासन करता हैं कस्मै देवाय-उस आनन्द स्वरुप परमदेव की हविषा-श्रद्धा पूर्वक विधेम पूजा करे ।

व्याख्याः- वही परमदेव परमात्मा एक मात्र पूजनीय है। जो सभी देवों दिव्य शक्तियो श्रेष्ठ पुरुषों का आश्रय है। सब मानव तथा पशु पक्षी उसी के नियन्त्रण में है।इस प्रकार के उस परमपिता सबके रक्षक दिव्य आनन्द का भण्डार ही सबका पूजनीय है। अपना सर्वस्व उसी को अर्पण कर भक्ति पूर्वक उसी की शरण में जा उसकी ही स्तुति पूजा करें। यही उसको पाने का मार्ग है।

सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारमनेकरुपम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वाशिवं शान्तिमत्यन्तमेति।।१४।।

पदार्थः- सूक्ष्मातिसूक्ष्मम-जो अत्यन्त सूक्ष्म कलिलस्य मध्ये-हृदय के अन्दर आत्मा के अन्दर स्थित विश्वस्य संसार के परिवेष्टितारम सारे विश्व को घेरे हुए एकम एकमात्र शिवम कल्याण कारक परमात्मा को ज्ञात्वा-जानकर मनुष्य शान्तिम्-शान्ति को ऐति प्राप्त होता है।

व्याख्याः- परमात्मा के स्वरुप का वर्णन करते हुए बताया है कि उसी को जान कर मुक्ति मिल सकती है। वह सभी जड चेतन से अतिसूक्ष्म है। वही पन्चतत्वों के पञ्चीकरण अर्थात उनके कम और अधिक मिश्रण से संसार की रचना करता है। प्रारम्भिक तत्वों के मिश्रण को कलिल संज्ञा दी गई है अन्यत्र भी कलिल का प्रयोग इसी अनेक रुप रंग वाले जगत की रचना होती है उसी प्रकार जीवों की उत्पत्ति भी नर मादा स्त्री पुरुष के रजवीर्य से मिलने से कलिल पदार्थ उसी से आगे पिण्ड और तब दृश्य मान जीव जन्तु नाना रुपों में उत्पन्न होते हैं। कलिलस्य मध्ये इस की व्याख्या भिन्न २ रुप में टीकाकारों ने की है-उनमें शंकरानन्द जी की व्याख्या इस प्रकार है- "नारीवीर्येण संगतं पौरुषवीर्यमल्पकालस्थं कलिलमित्युच्यते" वह परमात्मा जड चेतन के मध्य स्थित अर्थात सब को घेरे हुए सब के बाहर भीतर व्याप्त हो रहा है। ऐसे उस सर्वव्यापक कल्याण करने वाले ईश्वर को जानकर ही साधक परम शान्ति मुक्ति को पा सकता है।

स एव काले भुवनस्य गोप्ता विश्वाधिपः सर्वभूतेषु गूढः।
यस्मिन युक्ता ब्रहमर्षयो देवताश्च तमेव ज्ञात्वा मृत्युपाशांश्छिनन्ति।।१५।।

पदार्थः- काले-समय आने पर, सःएवः - वही, भुवनस्यगोप्ता -विश्वकारक्षक, विश्वाधिपः- जगत का अधिपति, सर्वभूतेषु वेदज्ञमहर्षिगण और देवता सभी विद्वान लोग युक्ता योगद्वारा युक्त हैं। तम् एवं ज्ञात्वा-उस ब्रहम को इस प्रकार जानकर साधक मृत्युपाशान-आवागमन

के बन्धनों को छिनत्ति काट देता है।

व्याख्या:- इस मन्त्र में काले शब्द विशेष महत्तवपूर्ण है अर्थात समय पर जब परमाणुओं में परस्पर मिलने की क्षमता हो जाती है तब वह सर्वज्ञ सृष्टि रचना और उसकी रक्षा करता है। वही परमपिता सब राजा और समस्त प्राणियों के अन्दर छिपा हुआ है। वेद के रहस्य को जानने वाले ब्रहमऋषि और सभी ज्ञानी योगी उसी के ध्यान में निरन्तर लीन रहते हैं अर्थात सदा प्रभु भक्ति में लगे रहते हैं। इस प्रकार जो साधक उस प्रभु को जान जाता है उसके आधीन अपना समर्पण कर देता है वही मृत्यु के बन्धन को तोड़ देता है। मुक्ति पा जाता है। सदा के लिये मुक्त होने का भाव यह है कि जब तक यह दृश्यमान जगत है तब तक जन्म मरण के बन्धनों से मुक्त हो जाता है। जब पुन: सृष्टि की प्रलय के पश्चात उत्पत्ति होती है तब सृष्टि क्रम के बन्धनों में आ जाता है।

'यथापूर्वमकल्पयत' सृष्टि रचना का क्रम निरन्तर समय पर अनादि काल से चला आ रहा है। इसी भाव को अगले मन्त्र में बताया गया है-

घृतात्परं मण्डमिवातिसूक्ष्मं ज्ञात्वा शिवं सर्वभूतेषु गूढ़म्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशै:।।१६।।

पदार्थ:- घृतात् परम् = घी से भी अधिक, मण्डमिव = माण्ड से भी अधिक

व्याख्या :- पात्र में घी के ऊपर एक सूक्ष्म तरल पदार्थ दिखाई देता है उसको ही माण्ड कहा गया है इसी प्रकार सर्वभूतेषु गूढ़म् = सभी प्राणियों के अन्दर व्याप्त अतिसूक्ष्मम् = अत्यन्त सूक्ष्म शिवम् = सबके कल्याणकारक शिव विश्वस्यैकम् = सारे विश्व को अकेला परिवेष्टितारम् = चारों ओर से घेरे हुये को ज्ञात्वा = जानकर सर्वपाशै: = सब प्रकार के बन्धनों से मुच्यते = मुक्त हो जाता है।

तमसो मा ज्योतिर्गमटा मृत्योर्मा अमृतं गमय मृत्यु: और तम: अज्ञान अन्धकार को कहते हैं वृ० उ० १/३/२८ में लिखा है

मृत्युर्वैतम: अज्ञानता को ही मृत्यु कहा है जब तत्व का ज्ञान हो जाता है तब मृत्यु का भय नहीं रहता यही बन्धन है। ज्ञानी जब इस प्रकार उस शिव को समझ लेता है। तभी सब बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

एष देवो विश्वकर्मा महात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्ट:।
हृदा मनीषा मनसाभिलृप्तो य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति।।१७।।

पदार्थ:- एष:-यह विश्वकर्मा = जगत् की रचना करने वाला महातमा = महात्मा देव: = दिव्यशक्ति शाली परमात्मा सदा निरन्तर जनानां हृदये = सभी मनुष्यों के हृदयों मे संनिविष्ट: = अच्दी प्रकार स्थित है। हृदा = हृदय से मनीषा = बुद्वि से और मनसा = मन से अभिक्लृप्त: = ध्यान में लगा हुआ ये = जो साधक एतत् = इस रहस्य को विदु: = जान

लेते हैं ते अमृता: = वे अमृत रूप भवन्ति = हो जाते हैं।
व्याख्या :- पुन: उस परमात्मा के स्वरूप का वर्णन किया है वह अपार दैवी शक्तियों का पुन्ज परमपिता महान् चेतनतत्व हैं वही विश्व को समस्त गति विधियों का केन्द्र है इसी लिये उसको विश्व कर्मा कहते है। वह सर्वदा प्राणियों के हृदय में निवास करता हैं उसका अनुभव विशुध ज्ञान भक्ति ओर मेघाबुद्धि से ध्यान लगा कर ही किया जा सकता है। मनीषा बुद्धि का विशेषण है मननशीला यह आत्मा तथा अनात्मा है इस विवेक बुद्धि से तथा मन की एकाग्रता से ही उसकी प्राप्ति हो सकती है इस प्रकार जो साधक योगी उस रहस्य को जान जाते है निश्चय ही वे मुक्त हो जाता हैं।

यदातमस्तन्न दिवा न रात्रिर्न सन्न चासञ्छिव एव केवल:।
तदक्षरं तत्सवितुवरिण्यं प्रज्ञा च तस्मात्प्रसृता पुराणी।।१८।।

पदार्थ:- यदा = जव अतम: = अज्ञान नहीं रहता तत् = उस समय न दिवा न रात्रि: = न दिन रात न सत् न असत् = न सत् न असत् है। केवल: = एकमात्र शिव: एव = कल्याण कारक शिव ही है। तत् = वह अक्षरम् = अविनाशी तत् वह, सवितु: = सब को उत्पन्न करने वाले का, वरेण्यम् - उपास्य है, च - और, तस्मात् - उसी से, पुराणी - वह सबसे पुराना सनातन, प्रज्ञा - वेद ज्ञान, प्रसृता - फैला है।
व्याख्या:- मुक्त अवस्था में ज्ञानी ध्यानी योगी की दशा का वर्णन किया गया है। साधक जब उस दिव्य तेज का साक्षात्कार कर लेता है उसके तेज में लीन हो जाता है। तब सारा अज्ञान नष्ट हो जाता है। उस प्रकाश तक सूर्य आदि का तेज भी नहीं पहुंच सकता है भौतिक जगत् में ही सूर्य के कारण दिन रात होते है। वहाँ न दिन होता है न रात सदा एक ज्योति का धाम है। वह ब्रह्मलोक-सत्- और असत् से प्रत्यक्ष दिखाई देने वाला जगत् और असत् - जगत् का कारण रूप से भी वह परे है। वहाँ तो एक मात्र उस दिव्य तेज स्वरूप का ही तेज प्रकाशित हो रहा है। उसी वरण करने योग्य परमात्मा विश्व की रचना करने वाले की दिव्य ज्योति छायी हुई रहती है। वहाँ उस तेज के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। इस दशा का नाम बौद्ध ग्रन्थों में शून्य वाद कहा गया है। बौद्ध मत इसी आधार पर टिका हुआ है। उसी तेजोमय से प्रज्ञा-दिव्य ज्ञान जो सृष्टि के आदि में प्रकट होता है विद्यमान है। जिसके प्रभाव से वह सृष्टि की रचना करता है वह ज्ञान-विज्ञान भी उसी में निहित है। इस दशा का अनुभव ही मोक्ष सुख है।

नैनमूर्ध्व न तिर्यञ्च न मध्ये परिजग्रभत् ।
न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महदयश:।।१९।।

पदार्थ :–एनम् – इस परमात्मा को, न – नहीं, ऊर्ध्वम् – ऊपर से, तिर्यञ्चम्- इधर-उधर से, मध्ये – बीच में से, परिजग्रभत् – भली-भांति पकड़ सकता है। यस्य – जिसका, महद्यश: – महान्यश नाम है। तस्य – उसकी, प्रतिमा – मूर्ति, न – नहीं, अस्ति – है।

व्याख्या :– यह मंत्र यजुर्वेद अध्याय ३० के ३ और ३२ के २ मंत्रों के अर्धभागों का मेल है। उस परमात्मा का कोई आकार या मूर्ति नहीं है। उसका कोई अवयव नहीं है। अत: उसको कोई ऊपर से अर्थात् मस्तिष्क द्वारा नहीं पकड़ सकता। न इधर उधर से अर्थत् अपने दायों-बायें हाथों से ही पकड़ सकता है न मध्य में स्थित हृदय से ग्रहण किया जा सकता है क्योंकि वह अभौतिक है। भौतिक शरीर के अंगों से उसको प्राप्त नहीं किया जा सकता है। उसका महान् यश जो यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड दिखाई दे रहा है उसकी इस रचना को देखकर उसको जाना जा सकता है। उसको जानने का साधन तो केवल हृदयाकाश में स्थित उसका मित्र आत्मा ही पा सकता है। अत: सारा तपव्रत जो किया जाता है आत्मशुद्धि के लिये क्योंकि शुद्धआत्मा द्वारा उसका ग्रहण किया जा सकता है। उसकी कोई मूर्ति भी नहीं बनाई जा सकती है, वह निराकार है। यजुर्वेद में भी उसको आकार रहित बताया गया है। ये ब्रह्म का इन्द्रियातीत का वर्णन किया है।

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदाहृदिस्थंमनसा य एनमेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति।।२०।।

पदार्थ :–अस्य – इस ब्रह्म का रूप, संदृशे – दृष्टि के सामने, तिष्ठति – ठहरता है, एनम् – इसको, कश्चन – कोई भी, चक्षुषा – आंखें से, न पश्यति – नहीं देख सकता है, ये – जो, एनम् – इसको, हृदिस्थम् – हृदय में स्थिर अन्तर्यामी को, हृदा- भक्तिभाव से, मनसा – पवित्र मन से, एवम् – इस प्रकार, विदु: – जानते हैं, ते – अमृता: भवन्ति – वे अमर हो जाते हैं।

व्याख्या :– पहले मंत्र के भाव को इस मंत्र में और स्पष्ट किया गया है, मूर्तिहीन निराकार परमात्मा का स्वरूप किसी भी शीशे आदि में नहीं दिखाई दे सकता। कोई भी इन भौतिक नेत्रों से उस निरूपण को नहीं देख सकता। जो अपने को भगवान् का कृपापात्र बना लेता है उसी के ऊपर प्रभु की कृपा जब होती है तब ज्ञानी साधक अपनी योग साधना द्वारा हृदय के अन्दर आत्मा में भी व्याप्त तत्व को पवित्र मन भक्ति और ज्ञान से साक्षात्कार करने में समर्थ हो सकता है। वही अमर हो जाता है। सदा के लिये जन्म-मरण से छूट जाते है। यहाँ तक परमात्मा के स्वरूप का वर्णन किया गया है। अब

उस प्रभु से प्रार्थना की जाती है।

अजात इत्येवं कश्चिद्भीरू: प्रपद्यते।

रूद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम्।।२१।।

पदार्थ :- अजात रूद्र! हे अजन्मा रूद्र देव, इति एवम् - इस प्रकार समझ, कश्चिद् - कोई, भीरू: - डरा हुआ जन, प्रपद्यते - तेरी शरण में जाता है, ते - तेरा, यत् - जो, दक्षिणं मुखम् - कल्याणकारी मुख है, तेन - उससे नित्यम् - सदा, माम् - मुझ शरणागत की, पाहि - रक्षा कर मृत्यु के भय को दूर कर।

व्याख्या :- हे अन्याय-अत्याचार को दूर करने वाले दुष्ट स्वभाव वालों को दण्ड देने वाले कभी जन्म न लेने वाले पिता! जैसे कोई सांसारिक जन्म-मरण भूख प्यास से भयभीत प्राणी उनसे बचने के लिये आपकी शरण में जाता है, उसी प्रकार मैं भी कल्याण कारी आपके पास साधना करके शरण में आया हूँ। कृपा करके अपने कल्याण कारी मुख से कृपा से इस संसार के दु:ख जाल से रक्षा करें।

मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिष:।

वीरान्मा नो रूद्र भामित: वधीर्हविष्मन्त: सदमित्वा हवामेह।।२२।।

पदार्थ :- रूद्र - हे दुष्टों को दण्ड देने वाले देव, हविष्मन्त: - हवि अर्थात् भेंट लेकर, सदम् - सदा, इत् - ही, त्वा - तुझे, हवामहे - रक्षा के लिये आह्वान करते हैं, भामित: - कुपित हुआ , न - न तो, तोके - पुत्रों में, तनये - पौत्रादियों, न आयुषि - आयु में, मा - न, गोषु - गौओं में, मा न: अश्वेषु - न हमारे घोड़ों में ही, रीरिष: - क्रोध न कर, न: - हमारे, वीरान् मा वधी: - हमारे वीर पुरुषों का भी नाश न कर।

व्याख्या :- इस मंत्र में "रीरिष:" रेषणां मरणं विनाशं मा कार्षी: क्रिया सब के साथ लगेगी। हे रूद्र! हम सदा ही नाना प्रकार की भेंट आपको अर्पण करते हैं। श्रद्धापूर्वक रक्षा के लिये आपका आह्वान करते है। हे प्रभो! आपकी कृपा से हमारे पुत्र, पौत्र, हम कभी वृद्धावस्था से पहले मृत्यु के ग्रास न बने। हमारे पशु जो जीवन के आधार गौ, घोड़े आदि है। उनको किसी प्रकार की बीमारी न हो। हमारे राष्ट्र के वीर सैनिक कभी पथ भ्रष्ट न हो जिससे आपके कोप के पात्र न बन जायें। यही हमारी प्रार्थना है। इसको स्वीकार करें।

इति चतुर्थोऽध्याय:

अथ पंचम अध्याय

इस अध्याय में पहले अध्याय की बात की पुष्टि की गई है।

द्वे अक्षरे ब्रह्मपरे त्वनन्ते विद्याविद्ये निहिते यत्र गूढ़े।

क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं तु विद्या विद्याविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः।।१।।

पदार्थ :-यत्र ब्रह्मपरे - जिस पर ब्रह्म में, अनन्ते - असीम अक्षरे - सदा वर्तमान में रहने वाले परमात्मा में, विद्याविद्ये - विद्या और अविद्या, द्वे - दो गूढ़े निहिते - गूढ़ रूप में निहित है। क्षरम् - नाशवान जड़ तु - तो अविद्या - अविद्या नाम से और अमृतं - अविनाशी "जीव" हि - ही विद्या - विद्या नाम से कही जाती है, यः - जो विद्या विद्ये ईशते - विद्या और अविद्या पर शासन करता है सः - वह अन्यः - इन दोनों से भिन्न है।

व्याख्या :- इस अध्याय में जीवात्मा और प्रकृति का मेल उस ब्रह्म के साक्षात्कार करने के लिये सिद्ध किया गया। प्रकृति जड़ और जीवात्मा लंगड़ा जड़ का सहारा लेकर ही ब्रह्म को पाने का निरन्तर प्रयास कर रहे हैं। महानता की ओर अग्रसर हैं। इन दोनों में विद्या और अविद्या छिपी हुई है। अविद्या नष्ट होने वाली तथा विद्या अमृत है। जब जीवात्मा का मेल अविद्या-अज्ञान रूप प्रकृति में होता है तब उसको नाना प्रकार के दु:खों का भोग भोगना पड़ता है। उसकी जब अविद्या अज्ञानता समाप्त हो जाती है तब वह विद्या के बल से आनन्द स्वरूप की ओर अग्रसर होता है। जो विद्या और अविद्या दोनों पर अपना नियन्त्रण कर रहा है वह इन दोनों से भिन्न अन्य परम पिता परमात्मा है। जैसे परमात्मा अविद्या से रहित है उसी प्रकार जीवात्मा भी अपने को योग साधना द्वारा उससे छुटकारा पा सकता है। आध्यात्मिक दृष्टि से विद्या को ज्ञान और अविद्या को कर्म आध यात्मिक और आधिभौतिक भी कह सकते हैं। spritualism and materialism भी कहते हैं। ये दोनों उस अक्षर अनन्त पर ब्रह्म में छिपी हैं। सृष्टि उत्पन्न होने पर उसी से प्रकट होती हैं। इनमें अविद्याक्षर और विद्या अमृत है। इनका स्वामी इन से भिन्न है। यही गीता १५ अ० द्वाविमौ पुरूषौ लोके ०१६, उत्तमः पुरूषस्त्वन्यः ०१९ में भी है।

यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको विश्वानि रूपाणि योनीश्च सर्वाः।

ऋषि प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञानैर्विभर्ति जायमान च पश्येत्।।२।।

पदार्थ :- यः - जो एकः - अकेला योनिम् योनिम् - प्रत्येक योनि पर विश्वानिरूपाणी - सब प्रकार के रूपो पर च - और सर्वाः योनीः - सब प्रकार के उत्पन्न करने वाले कारणों पर अधितिष्ठति - अधिकार रखता है यः - जो, अग्रे - सृष्टि के आदि में प्रसूतम् - उत्पन्न हुए कपिल ऋषिय- आप्त ऋषियों अदित्य- वायु, आदि को ज्ञानैः- अपने वेद

रूपी ज्ञान से विमर्ति- पुष्ट करता है। तम् जायमापम्-उस उत्पन्न हुये ऋषि वर्ग पर पश्येत् - अपनी कृपा दृष्टि वर्षाता है।

व्याख्या :- जो परमात्मा प्रकृति के तत्वों और जीवों के मिश्रण से नाना प्रकार के मनुष्य, पशु,पक्षी,कीट पतंग योनियों की रचना करता है वह अकेला होता हुआ भी सभी पर अपना प्रभुत्व रखता है। सृष्टि के आदि में जिसने आप्त ऋषियों जिनमें ईश्वरीय ज्ञान प्रकट करने की क्षमता होती है जो अन्तर्द्रष्टा होते हैं, उनकी रचना कर उनको अपने वेद ज्ञान से युक्त कर देता है। जब उत्पन्न हुए वे ऋषि अपने ज्ञान का प्रकाश करते हैं तब परमात्मा अपनी कृपा दृष्टि की वर्षा उन पर करते है। सृष्टि की आदि ज्ञान वाला ब्रह्मा है। जिसको पूर्ण वेदों का ज्ञान हो वही ब्रह्मा होता है। कपिल नाम उसी से सम्बन्धित है। पौराणिक ब्रह्मा को चतुर्मुख रूप मे दिखाते हैं, इसका भाव यही है कि चार वेद ही जिसके मुख हैं वही ब्रह्मा और कपिल है।

एकैकं जालं बहुधा विकुर्वन्नस्मिन्क्षेत्रे संहरत्येष देवः।
भूयः सृष्ट्रा पतयस्तथेशः सर्वाधिपत्यं कुरूते महात्मा।।३।।

पदार्थ :- एषं - यह देवः- परमेश्वर अस्मिन् क्षेत्रे - इस संसार रूपी क्षेत्र में एकैकम् - एक एक जालम् - जाल को पंच तत्वों तथा उनसे उत्पन्न बुद्धि आदि को बहुधा - बहुत प्रकार से विकुर्वन् - बनाता हुआ संहरति - प्रयलय काल में संहार कर लेता है महात्मा-वही परमात्मा ईशः- ईश्वर भूयः- पुनः तथा पहले की भांति पतयः सृष्ट्रा - सबकी रचना करके सर्वाधिपत्यम् कुरूते - सब पर अपना अनुशासन रखता है।

व्याख्या :- यहाँ एक बहेलिये की भांति जैसे वह धरती पर जाल फैला कर पक्षी-हिरण आदि को फंसाता और मार देता है उसी प्रकार दिव्य शक्तिवाला परम पिता परमात्मा अपनी विशेष शक्ति द्वरा नाना प्रकार की सृष्टि की रचना करके उस पर अपनी माया का जाल फैलाकर अर्थात् नाना प्रकार के भोग्य पदार्थों की ओर जीवाों को ललचा कर पुनः प्रलय काल में उनकी हत्या कर देता है। जीव अपने कर्म फलों को बार बार भोगने के लिये जन्म लेता और मरता रहता है। जाल में फंसने का यही भाव है। "जाल कर्मफललक्षणं वन्धनम्"। कर्म फल रूप बन्धन ही जाल है। पुनः प्रलय के पश्चात् यथापूर्वमकल्पयत् अनादिक्रम से चलने वाले संसार की रचना विभिन्न जीव जन्तुओं के रूप में करके उन पर अपना प्रभुत्व जमाये रहता है। इसी महती चेतन सत्ता के कारण उसको महात्मा कहते है।

सर्वादिश ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक प्रकाशयन् भ्राजते यदनड़वान्।
एवं स देवो भगवान् वरेण्यो योनिस्व भावानधितिष्ठत्येकः।।४।।

पदार्थ :- यत् उ - जिस प्रकार, अनड़वान् - सूर्य सर्वाः - समस्त दिशः - दिशाओं को

ऊर्ध्वम् - ऊपर से अध: - नीचे च - और तिर्यक् - इधर उधर से प्रकाशयन् - प्रकाशित करता हुआ। भ्राजते - चमक रहा है एवम् - इसी प्रकार भगवान् - वह स भगवान वरेण्य: - पूजने योग्य देव: एक: - अकेला ही योनिस्वभावान् - अधितिष्ठति - सभी योनियों के स्वभावों पर अधिपत्य करता है।

व्याख्या :- इस मंत्र में सूर्य का उदाहरण देकर बताया गया है जिस प्रकार सूर्य सब दिशाओं ऊपर नीचे इधर उधर सब ओर से सब को प्रकाशमान करता है और स्वयं भी देदीप्यमान हो रहा है, उसी प्रकार वह सबका भजनीय भगवान् संसार की सभी योनियों के स्वभाव का अकेला स्वामी बन कर संचालन कर रहा है। सूर्य अपने तेज से प्रत्येक अन्न को उसके स्वभाव के अनुसार पकाता है। अंगूर का मीठा रस, नींबू का खट्टा, आंवले का कसैला सबको पकाता है उसी प्रकार सब ऐश्वर्यों का भण्डार वह परम पिता अकेला ही भिन्न भिन्न मनुष्य पक्षु पक्षी कीट आदि योनियो को उत्पन्न करता और कर्मों के अनुसार उनको उनके स्वभाव से युक्त भी कर देता है। जीवों को उनके कार्यो का वैसा ही फल देता है। सत्व रज और तमोगुणों का वितरण करने वाला है।

"यच्च स्वभावं पचति विश्वयोनि: पाच्यांश्च सर्वान्परिणम येद्य: ।
सर्वमेतद्विश्वमधितिष्ठत्येको गुणांश्च सर्वान्विनियोजयेद्य: ।।५।।

पदार्थ:- यत् जो विश्वयोनि:= उत्पत्ति के कारणो च = ओर स्वाभावम् उनके स्वभाव को पचति- पकाता है। वा- जो सर्वान् पाच्यान्-सब पकाये जाने योग्य पदार्थों को परिणामयेत् अनेक रूपो में बदल देता है। य: एक: जो अकेला ही सर्वान् गुणान सब गुराों को विनियोजयेत जीवों के साथ यथा योग्य मिलाता है। एतत् सर्वम् यह सब विभ्वम् विश्व को अधितिष्ठति शासन करता है वह परमात्मा है।

व्याख्या :- संसार की उत्पत्ति के जो मूल कारण तीन गुण और पाञ्च तत्व हैं जो प्रलय काल में भिन्न भिन्न हो गये थे पुन: सृष्टि उत्पत्ति काल में उनको अपने संकल्प शक्ति द्वारा प्रकट करता है और नाना रूपों में विचित्र जगत की रचना कर देता है। इन तीनों गुणों को कर्मानुसार फल प्रदान कर नाना योनियों में उत्पन्न होने वाले जीवों में बांट देते हैं। जैसे जिसके कर्म वैसे उसका फल देने वाले हैं। इस प्रकार जो इस विभिन्न सृष्टि की रचना करके इस पर अपना सम्पूर्ण प्रभुत्व जमाये हुये इस पर शासन करते हैं वह सर्वशक्ति सम्पन्न सर्वज्ञ परमेश्वर एक ही है।

तद्वेदगुह्योपनिषत्सुगूढ़ं तद् ब्रह्मा वेदते ब्रह्म योनिम्।
ये पूर्वदिवा ऋषयश्च तद्विदुस्ते तन्मया अमृता वैवभुवु: ।।६।।

पदार्थ :- तत् - वह वेदगुह्योपनिषत्सु - वेदों के व्याख्या रूप उपनिषदों में गूढ़म् - छिपा हैं। बह्मयोनिम् - वेद ज्ञान स्थान तत् - उस को ब्रह्म वेदते - वेदों का पूर्ण ज्ञाता

जानता है। ये - जो पूर्व देवा: - पहले के विद्वान योगी जन और ऋषयः - ऋषिगण तत् - उसको विदु: - जानते थे ते - वे ही तन्मया - उस में लीन होकर अमृता - अमर हो गये।

व्याख्या :- वेदों अर्थात सम्पूर्ण ज्ञान का रहस्य उपनिषदों में दिया हुआ है इनके अध्ययन से उस परमतत्व को समझा जा सकता है। क्यों वेद भी उसी ब्रह्म से प्रकट हुये कहा भी है यस्य नि:श्वसितं वेदा: । जो पूर्ण रूप से वेद का ज्ञाता हो जाता है उसको ब्रह्मा कहते है और वही उसको जान पाता है। पहले जो तत्वदर्शी सिद्ध पुरूष हुये उन देवताओं और ऋषियों ने निश्चय ही उस प्रभु को जाना और उसी में लीन हो अमर हो गये। प्रत्येक साधक इसी प्रकार उसको पाने में तत्पर हो जाये यह भाव निकला। अब आगे जीवात्मा के सम्बन्ध में कहा गया है।

गुणान्वयों यः फलकर्मकर्ता कृतस्य तस्यैव स चोपभोक्ता।
स विश्वरूपस्त्रिगुणस्त्रिवर्त्मा प्राणाधिपः संचरति स्वकर्ममिः।।७।।

पदार्थ :- यः गुणान्वयः- जो तीनों गुणों से बन्धा हुआ सः- फलकर्मकर्ता- कर्मफल के अनुसार काम करने वाला ही तस्य कृतस्य-उस किये कर्म का उपभोक्ता- उपभोग करने वाला विश्वरूप भिन्न भिन्न रूपों में प्रकट होने वाला त्रिगुण:- तीन गुणों वाला त्रिवार्मा-तीन भागों वाला है स:- वह प्राणाधिय: प्राणों का संचालन जीवात्मा स्वकर्मभि: अपने किये कर्मों के अनुसार संचरति नाना रूपों में विचरण करता है।

व्याख्या:- शास्त्रों में आत्मा जीवात्मा परमात्मा च परमात्मा एकधा जीवात्मा अनेकधा च एकधा का वर्णन ऊपर हो चुका अब अनेकधा जीवात्मा का विषय प्रारम्भ होता है। ऋषि कहते हैं यह जीवात्मा सत्व रज और तम तीनों गुणों से युक्त होता है। संसार में आकर वह सकाम कर्म करता हुआ उन्हीं फलों को भोगता है- जैसे उसके कर्म भले-बुरे होते है उसी प्रकार की योनि में जन्मता और मरता प्रतीत होता है। तीन गुण जड़ प्रकृति के हैं जीवात्मा जब प्रकृति के मोह में मिल जाता है तब उस पर इन का प्रभाव पड़ता है फल की प्राप्ति के लिये कर्म करता हैं जैसे कर्म करता है वैसे ही फल पाता है। सतो गुणी होने से उत्तम योनि में, रजोगुणी होने से मध्यम योनि और तमोगुणी होने से निकृष्ट योनि में जाता है। इसी लिये इसको तीन मार्गों पर जाने वाला कहा है। यह प्राणों का स्वामी है इसके आधार पर जीव के अन्दर प्राणों का संचार होता है और कर्मों के अनुसार विचरण करता हैं। योगी राज श्री कृष्ण जी ने यही उपदेश अर्जुन को दिया- पुरूष: प्रकृतिस्थो हि भुड़क्ते प्रकृति जान्गुणान् १३-२१ गीता सत्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवा: १४-५ गीता तीन मार्ग तीन गुणों के प्रभाव से सत्वगुणा के संग से देवयोनि- रजोगुण से मनुष्य योनि और तमोगुण से पशु, पक्षी, कीट, पतंग- निकृष्ट योनियों में जन्म लेता है।

अंड्गष्ठमात्रो रवितुत्यरूपः सक्डंल्याहंकारसमान्वितो यः।
बुद्धेगुणेनात्मगुणेन चैव आराग्रमात्रो ह्यपरोऽपि दृष्टः ।।८।।

पदार्थ :- यः जो जीवात्मा शरीर में अंगुष्ठमात्रः- अंगूठे के बराबर रवितुल्यरूपः सूर्य के सदृश प्रकाशमान संकल्पाहंकार समन्वितः संकल्प और अहंकार से युक्त बुद्धेः बुद्धि के गुणेन गुणों से आत्मगुणेन और अपने गुणों से ही आराग्रमात्रः-सुई के अग्रभाग के संदृश सूक्ष्म है अपरः- दूसरा परमात्मा से भिन्न भी हि- निश्चय से दृष्टः देखा गया है।

व्याख्या :- आत्मा को ऋषि ने अंगुष्ठमात्र कहा है इस शरीर में हृदय ही अंगुष्ठ परिमाण का है और उसके अन्दर आत्मा का निवास माना गया है, क्योंकि वहीं से गति का संचार होता है। वह आत्मा सूर्य के समान तेज वाला है। उसी के तेज से शरीर में गति होती है। पुनरवि उसकी सूक्ष्मता के लिये उसे जो वांस की डण्डी पर एक लोहे की कील लगी रहती है उस कील के नोक के समान सूक्ष्म है। बुद्धि तत्व के द्वारा सत्यासत्य का विवेक करने वाला है। वह अपने गुणों का विकास कर दिव्यता को प्राप्त कर लेता है। परन्तु वह उस सर्वशक्तिमान से भिन्न हैं इसी लिये वह स्वभाव से अणु, अल्पशक्तिवाला, अल्पज्ञ होने से परमात्मा के समान नहीं हो सकता। इसीलिये ऊपर, शब्द का संकेत किया गया है। ज्ञानी जन ही इसको समझ पाते हैं अज्ञानी नहीं गीता में यही भाव प्रकट किया गया है।

उत्क्राम मन्तं स्थितं वापि भुञ्जान वा गुणान्वितम्।
विमूढ़ा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञान चक्षुषः १५-१०

आत्मा की सूक्ष्मता को पुनः समझाया गया हैं।

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते ।।९।।

पदार्थ :- बालाग्रशत भागस्य- बाल की नोक के सौवें भाग के समान सूक्ष्म पुनः उसके भी शतधा- सौ भागों में कल्पितस्य कल्पना किये जाने पर- भाग जो होता है सः जीवः- वही जीव का स्वरूप विज्ञेयः- समझना चाहिये च-और सः- वह अनन्त्याय- अनन्त शक्ति वाला लोकमे कल्पते-समझा जाता है। जीवात्मा की सूक्ष्म बाल के नोक के १०००० वां अंश कल्पना की गई है। इतना सूक्ष्म होते हुये भी जब वह अपनी शक्ति का विकास करता है तो बड़े बड़े आश्चर्य जनक कार्यों को कर डालता है। भले ही ब्रह्म की शक्ति से वह कम शक्ति रखता है। बुद्धि के गुणों और अपने अहंता तथा ममता आदि गुणों से युक्त होने पर वह एकदेशीय बन जाता है।

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः।
यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते ।।१०।।

पदार्थः- एषः- जीवात्मा न एव- न तो स्त्री न पुमान है न अयम् नपुंसक- न नपुंसक

ही है। सः- वह यत् यत् शरीरम्-जिस जिस शरीर को आदत्ते ग्रहण करता है तेन-तेन-उस उससे युज्यते- सम्बन्ध हो जाता है।

व्याख्या :- यह जीवात्मा सब प्रकार की उपाधियों और भेदों से भिन्न है। उसका न कोई नाम है न जाति। वह न स्त्री है न पुरूष न नपुंसक है। वह अपने कर्म फल के अनुसार जिस भी योनी में जन्म लेता है वही बन जाता है। वह कभी स्त्री पुरूष तो कभी पशु-पक्षी का रूप धारण कर लेता है। वह सर्वभेद शून्य है तो किस कारण से शरीर धारण करता है।

संकल्पनस्पर्शन दृष्टिमोहै र्ग्रासाम्बु वृष्टचा चात्मविवृद्विजन्म।
कर्मानुगान्यनुक्रमेण देही स्थानेषु रूपाण्यभिसंप्रपद्यते ।।११।।

पदार्थ :- संकल्पनस्पर्शनदृष्टिमोहैः- संकल्प स्पर्श दृष्टि और मोह से च-ओर ग्रासाम्बुवृष्टया- अन्न,जलपान और वर्षा से आत्मविवृद्विजन्म सजीव शरीर की वृद्वि और जन्म होता है देही- जीवात्मा स्थानेषु -विभिन्न स्थानों में कर्मानुगानि- कर्मो के अनुसार मिलने वाले रूपाणी- भिन्न शरीरों को अनुक्रमेण- क्रम से अभिसंप्रपद्यते बार बार प्राप्त होता रहता है।

व्याख्या :- उत्पत्ति का क्रम से कारण बताया है। पहले संकल्प होता है, तब स्पर्श त्वगिन्द्रिय का व्यापार होता है उसके पश्चात् दृष्टि जाती है तब मोह पैदा होता है। इन्हीं संकल्प,स्पर्श आदि के कारण शुभाशुभ कर्म जीव करता हैं इन्हीं कर्मो के फलस्वरूप यह जीव देवयोनि स्त्री पुरूष नंपुसक रूपों तथा तिरन्ज पशु पक्षी आदि योनियों मे जन्म लेता है। एक उदाहरण द्वारा समझाया गया है जैसे अन्न और जल से शरीर की वृद्धि होती है उसी प्रकार जीव को अपने किये कर्मों के अनुसार शरीरों की प्राप्ति होती है। जीव के गर्भ में आने का कारण सभी पुरूष के संकल्प- स्पर्श, दृष्टिपात आदि से मोह उत्पन्न हो सहवास से गर्भ में आता और माता के खाये हुये अन्न जल के रस से उसकी वृद्धि होती और जन्म होता है।

जीव का बार बार आवागमन का कारण बताया है।

स्थूलानि सूक्ष्माणि बहूनि चैव रूपाणि देही स्वगुणैर्वृणोति।
क्रियागुणैरात्मगुणैश्च तेषां संयोग हेतुरपरोऽपि दृष्टः ।।१२।।

पदार्थः- देही- जीवात्मा क्रियागुणैः- अपने संस्कारों से च- ओर आत्मगुणैः- शरीर के गुणों- स्वगुणै - ममता - मोह रूपी अपने गुणों - से स्थूलानि स्थूल ओर सूक्ष्माणी सूक्ष्म वहूनि रूपाणी - बहुत से रूपों को वृणोति - स्वीकार करता है। तेषाम् संयोग हेतुः- उनके संयोग के कारण अपरः- दूसरा भी दृष्टः देखा गया।

व्याख्याः- यह जीवात्मा अपने कर्मों के अनुसार ही स्थूल और सूक्ष्म शरीरों को प्राप्त

करता है। इनको कर्मफल प्राप्त कराने वाली शक्ति महान् चेतन स्वरूप है, जिसका अनुभव उसके स्वाभाविक शक्ति ओर गुणों की कियाओं से होता है। जीवात्मा इन शरीरों को धारण करके अपने कर्मों को तप आदि द्वारा सुधार कर उस अपर परमात्मा के दर्शन कर सकता है। जन्म मरण के बन्धन से छूटने का उपाय बताया है।

अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य सृष्टारमनेकरूपम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।।।१३।।

पदार्थ :- कलिलस्य मध्ये- इस उत्पन्न हुये संसार के बीच मे, अनाद्यन्तम्- आदि अन्त रहित "एकरस" विश्वस्य सृष्टारम् सारे संसार की रचना करने वाले अनेकरूपम्- अनेक रूप वाले विश्वस्य परिवेष्टितारं- सारे ब्रह्माण्ड को चारों ओर से घेरे हुये एकं देवं- एकं मात्र परम देव की- ज्ञात्वा- जानकर सर्वपाशैः सब प्रकार के बन्धनों से मुच्यते- छूट जाता है।

व्याख्याः- जो अपनी विशेष शक्ति से जीवात्माओं का सम्बन्ध अनेक प्रकार की योनियों मे कर्मानुसार उनका सम्बन्ध जोड़ने वाला जिसका न जन्म होता न मृत्यु न वृद्धि और क्षय ही होता हैं जो जीवों के हृदयाकाश में व्याप्त तथा सारे ब्रह्माण्ड में निराकार रूप से व्याप्त हो रहा है। जो सदा एक रस रहता हुआ भी जगत् की रचना कर विविध जीवों को प्रकट करता है तथा सारे जगत् को घेरे हुए है ऐसे सर्वशक्तिमान्, सर्वेश्वर को जानकर ही जीवात्मा सदा के लिए अमर हो जाता है। वह ब्रह्म किस प्रकार प्राप्त हो सकता है।

भावग्राह्यमनीडाख्यं भावा भावकरं शिवम्।
कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम्।।१४।।

पदार्थः- भावग्राह्यम्-श्रद्धा भक्ति से प्राप्त होने वाला। अनीडाख्यम्-आश्रयरहित भावाभावकरम्- सृष्टि का उत्पन्न और विनाश करने वाला शिवम्-कल्याण करने वाला कलासर्गकरम्-नाना प्रकार की कलाओं को देने वाला रचने वाला देवम्- परमदेव को विदुः- जान जाते हैं ते- वे तनुम्- शरीर को जहुः त्याग देते हैं, मुक्त हो जाते हैं।

व्याख्या :- जो परमात्मा शुद्ध अन्तः करणों से प्राप्त किया जा सकता है। जिसका कोई आश्रय नहीं जो शरीर रहित है जो जगत् की उत्पत्ति और विनाश करने वाला है। जो सब प्रकार के कलाओं को चन्द्र-सूर्य नभ आदि नाना प्रकार के कलाओं का विधान करने वाला जो सब का कल्याण करने वाला प्रश्नोपषिद् में ६/६/४ में सोलह कला युक्त परमदेव को कहा गया है। ऐसे ईश को जो अत्यन्त श्रद्धा भक्ति और उपासना द्वारा निश्चय करके जांन जाता है निश्चय ही वह इस शरीर के जन्म मरण के भय से बच जाता है। इसलिये उस परमात्मा को पाने के लिये शुद्ध हृदय से आराधना करने में लीन हो जाना चाहिये।

इति पन्चम अध्याय

अथ षष्ठ अध्याय

स्वभावमेके कवयो वदन्ति कालं तथान्ये परिमुह्यमानाः।
देवस्यैष महिमा तु लोके येनेंद भ्राम्यते ब्रह्यचक्रम् ।।१।।

पदार्थः- एकेकवयः कुछ विद्वान स्वभावम् वदन्ति- स्वभाव को जगत का कारण कहते है। अन्ये- दूसरें कालम्- काल को एते परिमुह्यमानाः- ये मोहग्रस्त हैं। तु वास्तव में एषः- यह देवस्य- परमेश्वर की लोके- संसार में फैली हुई महिमा- महिमा है। येन- जिससे इदम्- यह ब्रह्माण्ड चक्र भ्राम्यते- घुमाया जाता है।

व्याख्याः- इस ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में सृष्टि उत्पत्ति के कई कारण जैसे स्वभाव से जैसे अग्नि की शक्ति जलाना है, कुछ काल को जैसे वृक्षों पर फल फूल समय पर तथा प्राणियों में उत्पत्ति का रज वीर्य की शक्ति समय पर ही देखी जाती है। कोई यदृच्छा तो कोई पन्चभूत तथा सत्य रज तम रूप प्रकृति को कारण मानते है ये अनेक वादों का वर्णन किया है। अब ऋषि अन्त में अपना निर्णय देते हैं और कहते हैं कि उपरोक्त कारणों को बताने वाले पण्डित वैज्ञानिक सब मोह जाल में फंसे हैं जिससे वे विश्व के वास्तविक कारण को नहीं जान पाते । इस संसार की उत्पत्ति में काल आदि तो साधारण उपादान है- मुख्य निमित कारण तो इन्द्रियातीत- चेतन सर्वव्यापक ब्रह्य ही हैं बिना उसकी ईक्षण स्वरूप तप के सृटजन होना असम्भव हैं। क्योंकि सभी का स्वामी वही है।

येनावृतं नित्यमिदं हि सर्वं ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः।
तेनेशितं कर्म विवर्तते ह पृथ्व्यप्तेजो ऽ निलखानि चिन्त्यम्।।२।।

पदार्थः- येन इदम्सर्वम् = जिससे यह सारा जगत् नित्यम् = नित्य आवृतम् = ठका है। यः ज्ञः = जो ज्ञानस्वरूप कालकाल = महाकाल, गुणी = सर्वगुणसम्पन्न सर्ववित् = सब को जानने वाला है तेन ईशितम् = उसी से शासित हुआ कर्म= सृष्टि कर्म विवर्ते- अनेक प्रकार से चल तहा है। औ पृथ्व्यप्तेजाऽनिल रवानि = पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश भी उसी से शासित हैं। इति चिन्त्यम् = इस प्रकार चिन्तन करना चाहिये।

व्याख्याः- ऋषिगण पुनः प्रारम्भ में कही बात का विवरण करते कहते है। जिस महान् चेतन ने इस सम्पूर्ण जगत् को सबं ओर से व्याप्त किया है, वह सभी ज्ञान का केन्द्र है। जो कालातीत अर्थात् काल में जिसको विभाजित नहीं किया जा सकता जो काल की सीमा से बाहर है जो समस्त दिव्य गुणों वाला नित्य है। जो सब सत्य विद्याओं का आगार है।

जगत् की जो क्रियाशीलता देखी जाती है यह सब उसी की शक्ति से हो रहा है क्योंकि ज़ड़ प्रकृति में गति स्वयं नहीं होती उसकी प्रेरणा से सब चक्र घूम रहा है। पन्चमहाभूतों पृथ्वी,जल,तेज,वायु और आकाश सब पर वही अपना नियन्त्रण रख कर उनसे कर्म कर रहा है। यक्ष के आख्यात के रूप में केनो परिषद में भी यह बात समझाई गई है। इस रहस्य को समझ कर मनुष्य को एकमात्र उस सर्वशक्तिमान की उपासना करनी चाहिये।

तत्कर्म कृत्वा विनिवर्त्य भूयस्तत्वस्य तत्वेन समेत्य योगम्।
एकेन द्वाभ्यां त्रिभिरष्टभिर्वा कालेन चैवात्मगुणैश्च सूक्ष्मैः।।३।।

पदार्थः- तत् = उस रचना रूप कर्म = कर्म को कृत्वा = करके विनिवर्त्य = उसका पूर्ण रूप से निरीक्षण करके भूयः = फिर तत्वस्य = चेतन तत्व का तत्वेन = जड़ तत्व से योगम् = संयोग समेत्य = करके वा = अथवा आठ प्रकृतियों के साथ च = तथा कालेन = काल के साथ एव = और सूक्ष्मैः आत्मगुणैः = अपने सूक्ष्म गुणों के साथ योगम् = योग समेत्य = करके जगत् की रचना की है।

व्याख्याः- परमपिता परमात्मा ने मूलप्रकृति से पन्च महाभूतों की रचना की और उससे विरत हो जाता हैं जब जड़ प्रकृति के साथ चेतन आत्मा का संयोग होता है तब नाना प्रकार का जगत् प्रकट दिखाई देता है। तब जड़ चेतन के संयोग से निर्मित मानव अपने आत्मा ओर शरीरस्थ कर्मेन्द्रियों द्वारा अथवा सात्विक,राजसिक और तामसिक प्रवृत्तियों द्वारा या पांच ज्ञानेन्द्रियों,मन,बुद्वि, और प्राणों द्वारा काल के संयोग से आत्मा के छः गुणों इच्छा,द्वेष,प्रयत्न,सुख,दुःख तथा ज्ञान द्वारा कर्म करता है तब वह कर्मों के प्रभाव से कार्य करने में तत्पर हो जाता है। तत्व का तत्व के साथ संयोग = "combination of elements of principles " कर देता है। प्रकृति के आठ तत्व पान्च भूत पृथ्वी ,जल,अग्नि,वायु और आकाश है। कुछ वेदान्ती एक से अविधा दो से धर्म-अधर्म, तीन से तीन गुण सत्व, रज, और तम। पान्च पृथ्वी, जल, अग्नि वायु ओर आकाश मे तथा मन बुद्वि और अंहकार ये आठ तत्व माने हैं। इन सब से तथा आत्मा के अपने ममता-आसत्ति आदि सूक्ष्म गुणों से जीवात्मा का सम्बन्ध जोड़ जगत् की रचना की है। अन्य उपनिषदों में भी यह विवरण मिलता है। आठ प्रकार की प्रकृति गीता ७-४ में कही है।

"भूमिरापोऽनलो वायुः एवं मनो बुद्धिरेव च अंहकार इति"

भगवत प्राप्ति का उपाय

आरभ्य कर्माणि गुणान्वितानि, भावांश्च सर्वान्विनियोजयेद्यः।
तेषामभावे कृतकर्मनाशः कर्मक्षये याति स तत्त्वतोऽन्यः ।।४।।

पदार्थ:- यः = जो साधक गुणान्वितानि- गुणों से व्याप्त कर्माणी = कार्यों का आरम्य = प्रारम्भ करके च = और सर्वान् भावान् = सब भावों को विनियोजयेत= समर्पण कर देता है। तेषाम् = उन साधकों के उन कर्मों का अभावे = अभाव हो जाने पर कृतकर्मनाशः = पूर्वसंचित कर्मों का नाश हो जाता है। कर्मक्षये = कर्मनाश होने से सः = वह याति = परम पद को पा लेता है। तत्वतः अन्यः = जड़ प्रकृति से वह आत्मा भिन्न अर्थात् चेतन स्वरूप है।

व्याख्या:- इस मंत्र में कर्मयोग का वर्णन किया गया है। प्रकृति के सत्व, रज, और तमोगुणों और आत्मा के अहंता, ममता, आसक्ति भावों के मेल से जड़ शरीर ओर चेतन आत्मा के संयोग हो जाने पर कर्म और भाव की उत्पत्ति हो जाती है। कर्म तो शरीर के अंगों से किया जाता है। परन्तु शरीर तो है जड़ वह स्वयं कर्म करने में असमर्थ है वह आत्मा के भाव से प्रेरक होता है। क्रोध-प्रेम आदि भाव हैं। साहित्य में इन को रति - आदि नाम से पुकारते हैं। भाव आत्मा के अन्दर स्थाई रूप से छिपे रहते हैं। अनुकूल वातावरण मिलने पर ये फुट पड़ते हैं तब शरीर के अंगों में गति होती है। मानों किसी ने हमें अपशब्द कह दिये उसको सुनते ही व्यक्ति के अन्दर क्रोध जागृत हो गया और उस भाव के प्रकट होते ही शरीर के अंगों में गति संचार हो गया।

आंखों में लाली, रोंगटे खड़े होना और वाणी भी पीछे नहीं रहती वह भी बदले में गाली निकालनी प्रारम्भ कर देती है और इसके पश्चात् तो जो दशा हो जाती है उस दुर्दशा को सभी जानते हैं। जब भाव ज़ागा तब जड़ में गति आई। मनुष्य के अन्दर ये भाव पूर्वजन्म के किये संस्कारों के कारण भी उत्पन्न होते हैं। भारतीय दर्शन इन्हीं भावों को वस में करने का आदेश देते हैं। जब भावों पर आत्मा का नियन्त्रण हो जाता है तब कर्म फल की भावना नहीं रहती। इसी को कहते है निष्काम कर्म। जब तक मनुष्य जीवित है तब तक शारीरिक कर्म तो सांस लेना, खाना, जलपीना, मल-मूत्र त्याग करना तो चलता ही रहेगा तब इसी के लिये कहा है कि अपने सब भावों को कर्मों का समर्पण कर दो - किसी भी प्रकार की फल प्राप्ति की इच्छा न करो तब सांसारिक कर्मों से विरक्ति उत्पन्न हो जाती है। जब साधक अपने भावों को सांसारिक भोगों से अलग कर उन भावों का मेल उस परम तत्व आनन्द स्वरूप के आनन्द की ओर लगा देता है, उस परम दिव्य ज्योति से आत्मतत्व को अपनी आत्म शक्ति को प्रज्वलित करता है तब जो भी सांसारिक पूर्वजन्म के क्रोध, मोह, काम आदि भाव थे सब का नाश हो जाता है। क्योंकि उनके प्रति कोई कामना ही नहीं रहती और जब उनको कोई आधार नहीं मिलता

तो शनैः शनैः शान्त हो जाते हैं तब वह जो भी शरीर, मन, बुद्वि एवं इन्द्रियों से जो स्वाभाविक कर्म है वे सब चिन्तशुद्धि के लिये ही करता है। जब चित्तवृत्ति रूक जाती तब उस परमात्मा से योग होता है। योगशास्त्र में चित्तवृत्ति निरोध योगः कहा गया है। योगी जन फल विषयक आसत्ति त्याग कर उस परम तत्व को पा लेते है। इस प्रकार आत्म बुद्धि हो जाती है।

योगीराज श्रीं कृष्ण जी ने अर्जुन को यही बात गीता द्वारा समझाई है।

ब्रह्यण्याय कर्माणि संगं त्यक्ता करोतियः।
लिप्यते न स पापेन पद्मापत्रमिवाम्मसा।
कायेन मनसा वुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति संगत्यक्तात्मशुद्धये।। गी० ५-१०-११

आदिः स संयोगनिमित्तहेतुः परस्त्रिकालादकलोऽपि दृष्टः।
तं विश्वरूपं भवभूतमीडयं देवं स्वचित्तस्थमुपास्य पूर्वम्।।५।।

पदार्थः- सः = वह आदिः = कारण त्रिकालात् परः = तीनों कालों से परे अकलः = कलारहित अपि = भी संयोगनिमित्तहेतुः = प्रकृति और जीवात्मा का संयोग कराने के कारणों का भी कारण दृष्टः = देखा गया है। स्वचित्तस्थम् = अपने अन्तः करण में स्थित तम् विश्वरूपम् = उस स्वरूप भवभूतम = जगत् में व्याप्त ईऽयम् = पूजने योग्य पूर्वम् देवम् = पुराण पुरुष देव को उपास्य = उपासना करके प्राप्त करना चाहिये।

व्याख्याः- उस ब्रह्म की प्राप्ति का दूसरा साधन उपासना का वर्णन किया गया है। वह परमात्मा इस दृश्यमान सृष्टि से भी पूर्व रहने वाला, इस सृष्टि का निर्माण करने का पहला कारण है , वह कालातीत, अर्थात भूत, भविष्य , वर्तमान तीनों कालों से परे है वह सदा एक रस ही रहने वाला है। क० उ० ४/४/६ में कहा गया है "यस्मादर्वाक्संवासरोऽहोमिः" परिवतति जिसके नीचे आधीन संवत्सर दिनों के द्वारा परिवर्तित होता है वह अकल है वह सोलह कलाओं से रहित है अखण्ड है अतः जीव और प्रकृति उसके अंश नहीं हो सकते। वह संसार को अनेक रूप रंगों को रचने वांला भवभूतम् = भवति-अस्मात् = इति भवः। जिससे सृष्टि के उत्पत्ति होती है सृष्टि का निमित्त कारण है। भूतम् = सत्यस्वरूप सब दिव्य शक्तियों का केन्द्र विश्ववन्दनीय सनातन ईश्वर का जो साधक के अन्तः करण में विद्यमान रहता है मानव पहले उस देव की उपासना करे और उसको प्राप्त करने का यत्न करे।

स वृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यो यस्मात्प्रपञ्चः परिवर्ततेऽयम्ः।
धर्मावहं पापनुदं भगेशं ज्ञात्वात्मस्थममृतं विश्वघाम।।६।।

पदार्थः- यस्मात् = जिससे अयम् प्रपञ्चः = यह संसार परिवर्तति निरन्तर चलता रहता है वह वृक्षकालाकृतिभिः = संसार वृक्ष-काल और आकृति रूप से परे है। अन्यः = भिन्न है। धर्मावहम् = धर्म को बढ़ाने वाले पापनुदम् = पाप का नाश करने वाले भगेशम् सम्पूर्ण ऐश्वर्य के अधिपति विश्वधामः = जगत् का आधार-आत्मास्थम् = आत्मा के अन्दर स्थित ज्ञात्वा- जानकर अमृतम् = अमृत हो जाता है।

व्याख्याः-जिस की अनन्त शक्ति के आधार पर यह पञ्चभूतों से युक्त जगत् प्रवाह निरन्तर घूम रहा है। वह परमात्मा इस छेदन-भेदन वृद्धि-क्षय- वृक्षरूपी संसार से भिन्न काल का भी जो काल है सर्वदा एक रस और आकार से रहित है। सनातन सत्य नियमों तथा पालन के उत्थान के लिये अनेक प्रकार के विधि विधानों का वेद द्वारा बोध करने वाला है। जो उसकी उपासना करता है। उसके काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि पापों का नाश करने वाला, भगेशं, संसार के सभी प्रकार के ऐश्वर्यों का अधिपति ऋग्वेद प्रथम मंत्र के रत्नधातमम् कहा है वही परम देव है। जो समस्त जगत् का आधार है, सारा विश्व उसी के नियम पर टिका है वह प्रत्येक जीवात्माओं के अन्दर हृदयाकाश में सूक्ष्म रूप से सदा विराजमान रहता है। ऐसे उस प्रभु को जानकर ज्ञानयोगी उस अमृत स्वरूप परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। यह उस परमात्मा को पाने का ज्ञान रूप तीसरा साधन है।

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीऽयम्।।७।।

पदार्थः- तम् = उस ईश्वराणाम् परमम् = सब लोकवालों से भी महान् महेश्वरम्= महेश्वर देवतानाम्= सब देवताओं से परमं देवंम् महादेव को पतीनाम् = पतिम्= सब पतियों का भी जो पति है। भुवनेशम् = सारे ब्रह्माण्ड का जो स्वामी ईऽयम् = स्तुति करने योग्य तम् देवम् = उस प्रकाशस्वरूप देव को परस्तात् = सब से भिन्न विदाम = जानते हैं।

व्याख्याः- जिन योगियों ने उस ब्रह्म का साक्षात्कार किया वे कहते हैं। वह परमपिता संसार के बड़े बड़े सम्राटों तथा चक्रवर्तियों का भी सम्राट है। वह सब पर शासन करने वाला है। वह सब प्रकार की सम्पत्ति और ऐश्वर्य - शालियों से भी बड़ा शक्ति शाली और ज्योति स्वरूप है, वह सम्पत्ति, शक्ति और तेज का परमधाम है। वह सब रक्षकों और

पालकों का भी रक्षक और पालक हैं सब के स्वामी है ऐसे अत्यन्त वन्दना के योग्य देव को जो सबसे भिन्न अर्थात् सर्वोपरि है उसको जानते हैं।

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रुयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च।।८।।

पदार्थः- तस्य = उसके कार्यम्-करणम् = कार्य और इन्द्रिय रूप कारण न विद्यते = नहीं है। अभ्यधिकः = उससे अधिक और तत्समः = उसके समान भी न दृश्यते = नहीं दिखाई देता। अस्य = इसकी ज्ञानबलक्रिया = ज्ञान, बल और क्रिया रूप स्वाभाविकी = स्वभाव वाली परा शक्तिः = दिव्य शक्ति विविधा एव = अनेक प्रकार की ही श्रूयते = सुनी जाती है।

व्याख्याः- इस उपनिषद के तीसरे अध्याय प्रथम मन्त्र में कहा गया है कि उस परमेश्वर को अपने कार्यों के लिये किसी साधक और सहायक अर्थातः शरीर और कारण इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं। सृष्टि रचना वह अपने लिये नहीं अपितु जीवमात्र के कल्याण के लिये करता है जिसकी रचना के लिये किसी अन्य यन्त्र की आवश्यकता उसको नहीं है। उससे बड़ा तो किसी अन्य यन्त्र की आवश्यकता उसको नहीं हैं। उससे बड़ा तो क्या उसकी समानता करने वाला भी कोई दूसरा नहीं है। उस देव की शक्ति अपार है उसकी कोई सीमा नहीं है उसका अनेक प्रकार से बखान किया जाता हैं उसका ज्ञान सम्पूर्ण विषयों का जानने वाला सर्वज्ञ है और बल क्रिया अपनी अपार शक्ति से सबको नियन्त्रित कर अपने वश में रखने वाला है। क्योंकि वह एक है। यह बात आगे कहीं गई है।

न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके न चेशिता नैव च तस्य लिग्ंडम्।
स कारणं करणाधिपाधियो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः।।९।।

पदार्थः- लोके कश्चित् तस्य पतिः न = संसार में कोई भी उसका स्वामी नहीं है। न ईशिता = कोई शासक तस्य लिग्ंडम् न = उसका कोई चिन्ह विशेष भी नहीं हैं स कारणाम् = सब का परम कारण = करणाधिपाधिपः = सभी कारणों के कारणों का अधिपति है। कश्चित् = कोई भी तस्य जनिता = उसका पिता नहीं है। स्वयं भू है। न अधियः = और कोई उसका शासक नहीं है।

व्याख्याः- संसार में उस विश्वपति का शासक नहीं है। वह सर्वथा निराकार होने से कोई चिन्ह भी नहीं हैं वह स्वयं भू तथा आदि होने के कारण कोई उत्पन्न करने वाला नहीं है उसका कोई जनक नहीं है। उसका कोई स्वामी भी नहीं जिसका उसको कोई भय हो। वह तो इन्द्रियों के राजा इन्द्र जीवात्मा का भी शासक है। जीवात्मा के आधीन इन्द्रियां,

मन, बुद्धि, काम करती हैं और जीवात्मा को प्रेरक करने वाला वही देव है। निश्चय वही विश्व का रचियता है।

यस्तन्तुनाभ इव तन्तुभिः प्रधानजैः स्वभावतो देव
एकः स्वमावृणोत्। स नो दधाद् ब्रह्याप्ययम्।।१०।।

पदार्थः- तन्तुभिः तन्तुनाभः = तन्तुओं के द्वारा मकड़ी की भांति यः एकः देवः = जो एकाकी देव प्रधान जैः = अपनी मुख्य शक्तियों से उत्पन्न कार्यों द्वारा स्वभावतः = स्वभाव से ही स्वम्- अपने आप को आकृणोत्- अच्छादित कर रखा है। सः = वह नः = हम को ब्रह्याप्ययम् = अपने में दद्यात् = आश्रय दे।

व्याख्याः- सर्वान्तरयामी परमात्मा अपनी स्वाभाविक अनन्तशक्ति से प्रकृति से सृष्टि की रचना करता है और उस सृष्टि के रचे सब जड़ चेतन के अन्दर अपने को छिपाये हुये है जिस प्रकार एक मकड़ी अपने अन्दर से तन्तुओं को निकाल कर उन्हीं तन्तुओं के बने जाल के अन्दर छिपी रहती है। ऐसा वह प्रभू हमें ब्रह्यप्राप्ति के पवित्र मार्ग का यात्री बनावे।

एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़ः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माघ्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च।।११।।

पदार्थः- एकः देवः = अकेला देव ही सर्वभूतेषु गूढ़ः = सब प्राणियों के अन्दर छिपा है। सर्वव्यापी-सर्वभूतान्तरात्मा = वह सर्व में व्यापक तथा सब के अन्दर विद्यमान परमात्मा है। कर्माध्यक्षः = सबके कार्यों का संचालक है। सर्वभूताधिवासः = सब भूतों का निवास स्थान साक्षी = सब साक्षी चेता = चेतन स्वरूप केवलः = एकमात्र शुद्व और निर्गुणः = सत्व, रज-तम गुणों से रहित है।

व्याख्याः- एक होता हुआ भी वह परमात्मा सर्व भूतों पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकश में बसा हुआ है। सर्वव्यापक सर्वान्तर्यामी परमात्मा है, वही सर्व प्राणियों के कर्मानुसार फल देने वाला तथा उनका निवास स्थान है। सब के कार्यों को देखने वाला तथा महान चेतन स्वरूप सब को चेतना देने वाला शुद्व-पवित्र प्रकृति के सत्व-रज-तम गुणों से रहित, सब के पाप-पुण्य कर्मों को देखने वाला सब में मिला हुआ भी अपनी सत्ता से सबसे भिन्न है। पुनरपि इसी बात की पुष्टि की गई है।

एको वशी निष्क्रियाणां वहूनामेकं बीजं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्।।१२।।

पदार्थः- यः एकः = जो अकेला वहूनाम् निष्क्रियाणाम् = बहुत से गतिहीन जड़

वनस्पतियों के एक एक बीज = बीज को बहुधा करोति = अनेक रूपों में बदल देता है। तम् आत्म स्थम् = उस आत्मा के अन्दर स्थित को ये = जो धीराः = धैर्यशाली योगी अनुपश्यन्ति = निरन्तर ध्यान में अनुभव करते हैं तेषाम् = उनको शाश्वतम् सुखम् = सर्वदा रहने वाला सुख प्राप्त होता है। इतरेषाम् न = दूसरों को नहीं।

व्याख्याः- वह सम्पूर्ण ब्रह्मण्ड को अपने वश से रखने वाला परमात्मा अकेला ही गति शून्य असंख्य वनस्पतियों-वृक्षों आदि के एक एक बीज को बहुत बनाने वाला है। देखा जाता है कि पन्च-भूत पृथ्वी, जल, तेज, वायु -आकाश किसी भी पौधे को उगाने में असमर्थ हैं उनके अन्दर उस परमात्मा की व्यापिनी गति शक्ति है जिससे बीजों से अंकुर-फूटते और वृहदाकार वृक्ष बन जाते हैं। ऐसे उस विचित्र आत्मतत्व को जो सबके अन्दर स्थित है। जो धैर्यशाली योगी जन आत्मा में अन्दर निरन्तर उसको देखते हैं उन्हीं क़ा सुख प्राप्त होता है। जो चंचल प्रकृति के होते हैं उनको वह आनन्द प्राप्त नहीं होता।

नित्योनित्यानां चेतनश्चेतनानामेको वहूनां यो विदधाति कामान्।
तत्कारणं सांख्य योगाधिगम्यं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।।१३।।

पदार्थः- यः एकः = जो एक नित्यः चेतनः = नित्य चेतनस्वरूप परमात्मा बहूनाम् नित्यानाम् चेतनानाम् = बहुत से नित्य चेतन आत्माओं के कामान् विदधाति = कर्मफलों का विधान करता है। तत् = उस सांख्य योगाधिगम्यम् = ज्ञान और कर्मयोग से प्राप्त होने योग्य कारणम् देवम् = मूल कारण देव को ज्ञात्वा = जान कर सर्वपाशैः = सब बन्धनों से मुच्यते = मुक्त हो जाता है।

व्याख्याः- वेद के त्रैतवाद का प्रतिपादन इस मन्त्र में किया गया है। वह परमात्मा नित्य रहने वाले परमाणुओं और जीवात्माओं में जिनकी गिनती नहीं की जा सकती उनके केवल एक महान् और नित्यतत्व है। असंख्य जीवित प्राणियों में महान् चेतन तत्व है सृष्टि की रचना करके समस्त जीव जगत् के लिये कर्मानुसार जिसके जैसे कर्म थे उसके अनुसार उनको फल भोगने की व्यवस्था की है। अकेला सब जीवों के शुभ संकल्पों को पूर्ण करने वाला है। शास्त्रों में वर्णित ज्ञान और कर्मयोग से वह संसार का निमित कारण जाना जाता है उस देव को जान कर साधक सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है। इसलिये उसको प्राप्त करने के लिये ज्ञान योग या कर्मयोग साधन अपनाना चाहिये। उस ब्रह्म के प्रकाश से सृष्टि प्रकाशित हो रही है।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्व तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।।१४।।

पदार्थः- तत्र सूर्यः न भाति = वहाँ सूर्य का प्रकाश, चन्द्रतारकम् = चन्द्र और ताराओं का प्रकाश, इमा विद्युत = ये बिजलियां ही न = भान्ति = प्रकाशित नही हो सकती हैं। अयम् अग्निः = यह लौकिक अग्नि कुतः = कैसे प्रकाशित हो सकती है तम् भान्तम् एव = उसके प्रकाशित होने पर ही सर्वम् अनुभाति = उपरोक्त सूर्य-चन्द्र आदि प्रकाशित होते है। तस्य भासा = उसके प्रकाश से इदम् सर्वम् = यह सम्पूर्ण जगत् विभाति = प्रकाशित होता है।

व्याख्याः- इस जगत् में जितने भी प्रकाश फैलाने वाले जड़ पदार्थ सूर्य, चन्द्र, तारे, विद्युत् हैं इनमें स्वतः अपना कोई प्रकाश नहीं हो सकता। बड़े तेज के सामने छोटा तेज फीका हो जाता है। यह भौतिक अग्नि में भी वह शक्ति नहीं कि उस प्रकाश के सामने चमक सके। अतः स्पष्ट है कि जगत् में जो भी दिव्य तेज है सब उसी ज्योतिस्वरूप का तेज है। योगीराज श्री कृष्ण जी ने भी यही बात कही है -

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः गी० १५-६

अब ज्ञानादृते न मोक्षः ज्ञान के बिना मोक्ष नहीं यह समझाया है।

एको हंसो भुवनस्यास्य मध्ये स एवाग्निः सलिले संनिविष्टः।
तमेव विदित्वाति मृत्युमोति नान्य पन्था विद्यतेऽयनाय।।१५।।

पदार्थः- अस्य भुवनस्य मध्ये = इस जगत् के बीच में एकः हंसः = अकेला हंस परमात्मा स एव सलिले = वह ही जल में संनिविष्टः = स्थित अग्नि है। तम् विदित्वा एव = उसको जानकर ही मनुष्य मृत्युम् अत्येति = मृत्युरूप संसार से पार हो जाता है अयनाय = दिव्य ब्रह्म की प्राप्ति के लिये अन्यः = दूसरा पन्थाः = मार्ग न विद्यते = नहीं है।

व्याख्याः- इस दृश्यमान जगत् में प्रकाश रूप परमेश्वर समाया हुआ है। हंस की उपमा इसलिये दी गई है जैसे हंस गन्दगी को नष्ट कर देता है। हन्ति-अविद्यादि बन्धकारणम् इति हंसः संसार को जल रूप और उसके अन्दर विद्यमान अग्नि को परमतत्व कहा गया है। जल तत्व में अग्नि व्याप्त है वैज्ञानिकों ने भी जल के अन्दर छिपी अग्नि की शक्ति का प्रयोग यन्त्रों के रूप में प्रत्यक्ष कर दिया है। उसी प्रकार इस जड़ जगत् के अन्दर व्याप्त वह प्रकट रूप में नहीं दिखाई देता जो साधक अपनी घोर तपस्या द्वारा उसका साक्षात्कार कर लेता है वही मृत्यूरूप संसार के दुःखों से छूट सकता है- इससे भिन्न

उसको प्राप्ति का कोई मार्ग नही है। मोक्ष प्राप्ति का एक मात्र मार्ग यही है। यजुर्वेद में जो भाव प्रकट किया गया है उसी के आधार पर ऋषि ने कहा है

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय। यजु ३१/१८

स विश्वकृद्विश्वविदात्मयोनिर्ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः।

प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः संसार मोक्ष स्थिति बन्ध हेतुः।।१६।।

पदार्थः- सः ज्ञः = वह परमात्मा विश्वकृत = सृष्टिकर्ता विश्ववित् = सर्वज्ञ आत्मयोनिः = स्वयंभू कालकालः = काल का भी काल गुणी = दिव्य गुणों वाला सर्ववित् = सब कुछ जानने वाला यः = जो प्रधानक्षेत्रज्ञपतिः = प्रंकृति और जीवात्मा का स्वामी है। गुणेशः = गुणों का शासक और संसार मोक्ष स्थिति बन्ध हेतुः = वही संसार के बन्धनों मे बान्धने, स्थित करने और मुक्त करने वाला है।

व्याख्याः- वह परम देव परमात्मा सम्पूर्ण जगत् का रचने वाला और सब कुछ का ज्ञाता है। वह स्वयम्भू है उसको जन्म देने वाला कोई नहीं है। वह काल का विभाजन करने वाला कालातीत अर्थात् काल भी उस तक नहीं पहुच पाता। वही सब गुणों का कर्मानुसार विभाजन करने वाला और सर्वज्ञ है। वही प्रकृति और जीवात्माओं का स्वामी है। वही इस संसार के सुख-दुःख में जीवों को उत्पन्न तथा उनका पालन ओर अन्त में मोक्ष देने वाला है। उसकी कृपा से साधक जब अपनी साधना पूर्ण कर लेता है तब उसको मोक्ष का आनन्द देने वाला वही है।

स तन्मयो ह्यमृत ईशसंस्थोज्ञः सर्वगो भुवनस्यास्य गोप्ता।

य ईशे अस्य जगतो नित्यमेव नान्यो हेतुर्विद्यत ईशनाय।।१७।।

पदार्थः- सः हि = वही तन्मयः- तल्लीन, अमृत- अमृतरूप ईशसंस्थः- सब में स्थित ज्ञः- सर्वज्ञः सर्वगः= सब जगह परिपूर्ण अस्य भुवनस्य = इस ब्रह्माण्ड का गोप्ता = रक्षक है। यः = जो अस्य जगतः = इस जगत का नित्यम् एव ईशे = निरन्तर शासन करने वाला है। ईशनाय = शासन करने के लिये अन्य हेतुः = दूसरा कोई कारण न विद्यते = नहीं है।

व्याख्याः- इस मन्त्र में पुनः उस परमात्मा के गुणों का वर्णन किया गया है। वह इस सम्पूर्ण विश्व में लीन है उसी के प्रकाश से यह सब प्रकट हो रहा है। वह अमृत है अर्थात् जन्म मृत्यू के प्रपन्च से पृथक् सदा एक रहने वाला है। जो इस विश्व का शासन करने

की सभी मर्यादाओं से युक्त है यही उसकी पराकाष्ठा है। वह जानातीति ज्ञः = सब कुछ का ज्ञाता और सर्वज्ञ गच्छतीति सर्वगः = उसकी सर्वत्र पहुँच है। वह इस सम्पूर्ण भुवन का रक्षक और इस पर शासन करने वाला है। इस ब्रह्माण्ड पर शासन करने वाला अन्य कोई नहीं है।

यो ब्रह्माणां विदधाति पूर्व यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तं ह देवमात्मबुद्धि प्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये।।१८।।

पदार्थः- वै = निश्चय ही यः = जो पूर्वम् = पहले ब्रह्माणाम् = ब्रह्मा को सम्पूर्ण वेद के ज्ञाता = ऋषि को विदधाति = रचता है। यः = जो तस्मै = उस आत्म ऋषि को वेदान् = सम्पूर्ण वेदों का ज्ञान प्रहिणोति = प्रदान करता है तं आत्मबुद्धिप्रकाशमः = उस आत्म ज्ञान का प्रकाश करने वाले ह देवम् = देव परमेश्वर को अहम् = मै साधक मु मुक्षुः = मोक्ष का इच्छुक शरणं = शरण प्रपद्ये = ग्रहण करता हूँ।

व्याख्याः- सृष्टि का क्रम अनादि काल से चला आ रहा है। अव्यक्त से व्यक्त और पुन प्रलय यह उस परमात्मा का व्रत है। जब प्रलय के पश्चात सृष्टि की उत्पत्ति होती है तब विशेष ज्ञानी योगी मुक्ति से लौटने वाले ऋषि गण उत्पन्न होते और उन आप्तों के अन्दर ज्ञान, कर्म, उपासना और विज्ञान का विधान करने वाले ऋक्, यजु, साम और अथर्व का प्रकाश वह परमात्मा अपनी स्वाभाविक शक्ति द्वारा कर देता हैं जिस ऋषि को चारों वेदों का भरपूर ज्ञान हो जाता है उसी को आदि पुरुष ब्रह्मा कहते हैं उस दिव्य गुणों के भण्डार परम देव की जो आत्मा और बुद्धि को अपने ज्ञान रूपी प्रकाश से युक्त कर देता हैं उपासक केवल मुक्ति की इच्छा से ही उस परम पिता की शरण में जाने की अभिलाषा रखता हैं। अन्य सांसारिक भोग तो अपने परिश्रम से साधक प्राप्त कर सकता है।

निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम् ।
अमृतस्य परं सेतुं दग्धेन्धनमिवानलम्।।१९।।

पदार्थः- निष्कलम् = कलारहित निष्क्रियम् = क्रियाहीन शान्तम् = शान्त निरवद्यम् = दोषरहित निरञ्जनम् = पवित्र अमृतस्य परम् सेतुम् = मोक्ष के परम सेतुरूप दग्धेन्धनम् = जले हुये लकड़ी वाले अनलम् इव = अग्नि के सदृश पवित्र का चिन्तन करता हूँ।

व्याख्याः- तत्व द्रष्टा ऋषियों ने पुनः उस महातत्व का वर्णन किया है। वह संसारिक कलाओं से रहित, किसी प्रकार की क्रिया से हीन है किसी भी प्रकार का दोष उसमें

नहीं है। जो साधक को संसार के प्रञ्चों से पार कराने का साधन रूप पुल के समान है। निर्धूम अग्नि के समान उज्जवल जैसे लकडी जो जल जाती है और उसमे धुंवे से रहित अग्नि दिखाई देती है निर्विकार, ज्योति पुञ्ज, निराकार परम देव को जानने के लिये उनका चिन्तन करता हूँ, इस प्रकार की भावना साधक के मन में होनी चाहिये।

इसी भाव को अगले मन्त्र में पुनः स्पस्ट किया गया है।

यदा चर्मवदाकांश वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।

तदा देवविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविस्यति।।२०।।

पदार्थः- मानवाः- मनुष्य यदा- जब आकाशम्- आकाश को चर्मवात्- चमड़े की भाँति वेष्टयिष्यन्ति- समेट सकेंगें तदा- तब देवम् अविज्ञाय- उस देव को बिना जाने ही दुःखस्यान्तः- दुःख का नाश भविष्यति- हो सकेगा।

व्याख्याः- इस मन्त्र में साधक के लिये परमपुरूषार्थ का संकेत किया है- जब कोई सापधक जैसे प्रलय काल में दृश्य मान् जगत् प्रमाणु रूप में सिमिट कर छा जाते हैं स्थूल जगत् अदृश्य हो जाता है तब सारी गति समाप्त हो जाती है। इसी प्रकार जब साधना करने वालों के शरीरों का अन्त हो जायेगा और केवल कारण शरीर के सहारे अनन्त आकाश में भ्रमण करेंगें तब उस परमदेव को बिना जाने ही, क्योंकि प्रलय अवस्था में जब इन्द्रिय, मन, बुद्धि तथा शक्ति से निर्मित सूक्ष्म नहीं रहेगा। तब उसके सुःख दुःख आदी भोग स्वतः नष्ट हो जावेगें। ऐसी स्थिति में केवल मात्र उस प्रमात्मा की शरण में जाना अर्थात् योंग के द्वारा अपने आत्मा को उस ब्रह्माग्नि में तपाना ही साधका का पुरूषार्थ है। बिना तप और साधना के संसार के दुःखों से छूटना असम्भव ही है। अज्ञान को दूर करके ही ज्ञान की प्रापति हो सकती है अतः अज्ञान के साधन समाप्त करके ही मोक्ष- सुख प्राप्त हो सकता है।

योगीराज श्री कृष्ण जी ने अर्जुन को स्पस्ट रूप से उपदेश दिया-

अज्ञानेनावृतं ज्ञा तेन मुह्यन्ति जन्तवः।

ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः।। गीता ५-१५

तयः प्रभावाद्देवप्रसादाच्च ब्रह्म ह श्वकताश्वतरोऽथ विद्वान।।

अत्याश्रमिभ्यः परमं पवित्रं प्रोवाच सम्मगृषिसंघजुष्टम् ।।२१।।

पदार्थः- निश्चय ही श्वेताश्वतरः- श्वेताश्वतर नामक ऋषि ने तपः प्रभावात्- तपस्या के प्रभाव से च- और देवप्रसादात्- परमात्मा की कृपा से ब्रह्म विद्वान्- ब्रह्म के ज्ञाता बने।

अथ ऋाषि सऽघजुष्टम्- ऋषि समुह से सेवित परमम्- पवित्रम- परम पवित्र अत्याश्रमिम्य:- अभिभान रहित आश्रम वासियों को सम्यक्- अच्छी प्रकार प्रोवाच- उपदेश दिया।

व्याख्या:- उपनिषद् काल में यह प्रसिद्ध हसे गया था कि ऋषि श्वेताश्वतर ने सांसारिक सुखों की उपेक्षा कर संयम पूर्वक साधनामय जीवन बीता कर तथा अपनी तपस्या से भगवान् की कृपा पाकर एस ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त कर लिया। ब्रह्म का ज्ञान पाकर ऋषियों ने अपने आश्रम में उपस्थित ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक सन्यासियों को ब्रह्म प्राप्ति के योग्य समझ लिया उनको अच्छी प्रकार उपदेश दिया। जिन्होंने सांसारिक मोह मांया का त्यागकर अपने आत्मा को पवित्र बना लिया हो वे ही ब्रह्मतत्व के उपदेश को सुनने योग्य होते हैं।

वेदान्ते परमं गुह्यं पुरकल्पे प्रचोदितम्।
नाप्रशान्ताय दातव्यं नापुत्रायाशिष्याय वा पुन:।।२२।।

पदार्थ:- पुराकल्पे- बहुत पुराने कल्म में यह परमम्- गुह्यम्- अत्यन्त रहस्य मय ज्ञान वगदान्ते- वेदों के अन्तिम उपनिषदो में प्रचाकदितम्- कहा गया अप्रशान्ताय- जो शान्तचित न हो न दातव्यम्- इसका उपदेश नहीं देना चहिये। पुन: अपुत्राय- जो पुत्र या शिष्य न हो । अर्थात् जिसमें पुत्र और शिष्य के गुण न हों उस अयोग्य को भी यह उपदेश नहीं देना चहिये।

व्याख्या:-वेदान्त शास्त्र में बहुत समय पूर्व से इस ब्रह्मविद्या जिसको परा विद्या के नाम से जाना जाता है जिस विद्या से प्रकृति-जीव और परमात्मा का पूर्ण विज्ञान बताया गया है। यह अतिगूढ़ विषय वेदों के सार रूप उपनिषदों में बताया है। इस विद्या का उपदेश ऐसे व्यक्ति को नहीं देना चाहिये जिसकस मन चंचल हो सांसारिक व्यसनों में फंसा हो- और इन झंझटों से छुटना भी न चाहता हो। इसमे चाहे वह अपना पुत्र या शिष्य ही क्यों न हो। गुरू और पिता का कर्तव्य है कि अपने शिष्य आक्र पुत्र को इस योग्य बना ले कि उसको यह विद्या ग्रहण कराने योग्य बना दे। यमाचार्य ने नचिकेता की पूर्ण परीक्षा लेकर उसको ब्रह्य विद्या का रहस्य बताया कठोपषिद् इसका उदाहरण है। इन्द्र की सौ वर्ष तक परीक्षा लेकर प्रजापति ने ब्रह्यविद्या का उपदेश दिया। इसलिये सुपांत्र को इस विद्या का लाभ हो सकता है जो अयोग्य होगा उसकी तो इस ओर प्रवृत्ति ही नहीं होगी। जिज्ञासु के अन्दर श्रद्धा जगाने का काम गुरू और पिता का कर्तव्य है कि शिष्य और पुत्र को अधिकारी बनावे। सुपात्र को दिया उपदेश ही सफल होता है।

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्था: प्रकाशन्ते महात्मन:।।
प्रकाशन्ते महात्मन: ।।२३।।

पदार्थः- यस्य देवे जिसकी परमात्मा मे परा भक्तिः = विशेष भक्ति है। यथा = जैसे देवे = परमात्मा में तथा गुरौ = उसी प्रकार गुरू में हो। तस्य महात्मनः = उस महापुरुष के हृदय मन्दिर में ही एते कथिताः = कहे हुये अर्थाः = रहस्य पूर्ण अर्थ प्रकाशन्ते = प्रकट होते हैं। प्रकाशन्ते महात्मनः = उसी श्रद्धालु के हृदय में प्रकाशित होते हैं।

व्याख्याः- इस श्वेताश्वतरोपनिषद् में ऋषि श्तेताश्वतर द्वारा उपदेश जिसमें ब्रह्मविद्या का रहस्य छिपा हुआ है। यह विद्या उसी श्रद्धालु जिसमें चंचलता नहीं साधना द्वारा जिसने अपने को जितेन्द्रिय बना दिया हो और परमपिता परमात्मा के प्रति जैसी भक्ति वैसी श्रद्धा सत्यगुरू के प्रति भी हो, अर्थात् गुरू वही हो सकता है जिसके अन्दर किसी प्रकार का दोष न हो उसी का प्रभाव पड़ सकता है शुद्ध आचरण वाला हो। जिसके अन्दर तीव्र भावना हो कि मैं इस विद्या को कैसे जानू जैसे भूखा मनुष्य अन्न की प्राप्ति के लिये प्रयास करता है और अन्न मिलने पर ही उसको शान्ति मिलती है- इसी प्रकार की श्रद्धा जिसके हृदय में हो उसी अधिकारी को यह उपदेश लाभदायक है। इस रहस्य का पूर्ण भाव उसके हृदय में बैठ जाता है। उसी को सब ज्ञान प्रकट हो जाता है। आवृत्ति समाप्ति सूचक है।

शमिति षष्ठोऽध्यायः

समाप्त मिंद श्वेताश्वतरोपनिषद्

भाष्यम् = फाल्गुन कृ० १० सं० २०५१
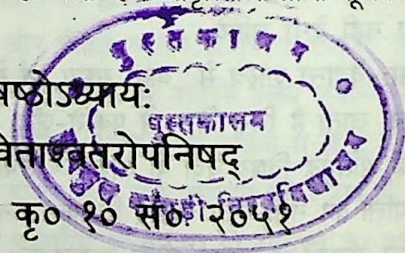
स्वतन्त्रता संग्राम में समर्पित ग्राम मंजगांव के सेनानियों का स्मृति अङ्क राष्ट्र के भावी नागरिकों को समर्पित ।।
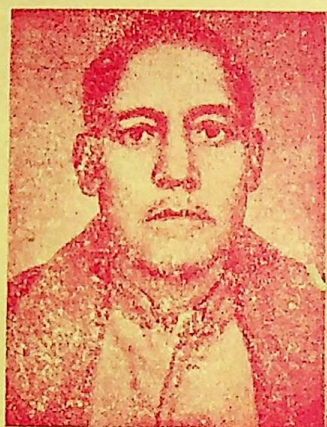
विश्वम्भरदेव शास्त्री 'सुन्दरियाल'
(स्वतन्त्रता सैनानी)

वीरभद्र शर्मा शास्त्री
सम्पादक

प्रकाशित भाष्य :

१-ईशोपनिषद्
२-प्रश्नोपनिषद्
३-माण्डूक्योपनिषद्
४-मुण्डकोपनिषद्
५-ऐतरेयोपनिषद्
६-केनोपनिषद्
७-तैतरीयोपनिषद्
८-श्वेताश्वतरोपनिषद्
९-पुरुष सुक्त

ग्रीष्म में :
चौन्दकोट आर्य समाज मजगांव
चौबट्टाखाल जनपद पौड़ी गढवाल
उत्तराखण्ड

अन्य समय :
आर्य समाज मंदिर
देवबन्द (सहारनपुर)

नव सम्वत्सर चैत्र प्रतिपदा २०५५
२९-३-१९९८

प्रकाशक :
आर्य समाज चौन्दकोट
मजगांव, पो० चमनाऊ
पौड़ी गढ़वाल

विश्व-बन्धु प्रिन्टर्स (निकट-सुभाष चौक) देवबन्द ।